आवरण पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोधन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा मुंशी व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा दूसरी शती ई०

सौजन्य राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्मा

दण्डी

जयशकर त्रिपाठी

साहित्य अकादेमी

Dandi A monograph in Hindi by Jaishankar Tripathi on the Sanskrit poet Sahitya Akademi, New Delhi (1986) Rs 5

साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण 1986

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली 110001

क्षेत्रीय कार्यालय
ब्लाक V बी रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता 700029
29 एल्डाम्स रोड (द्वितीय मंजिल), तेनामपेठ, मद्रास 600018
172 मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग दादर बम्बई 400014

मूल्य
पाँच रुपये

मुद्रक
रूपाभ प्रिंटर्स
दिल्ली 110032

सूची

1 कवि दण्डी समय और कृतियाँ
2 दण्डी की लोकप्रियता
3 काव्यादर्श 17
काव्यशास्त्र म विदग्ध गोष्ठी का अभिलेख— दश गुण, काव्य की भाषाएँ, काव्य के भेद महाकाव्य काव्य का लक्षण अलकार निदर्शन—स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति उपमा रूपक व्यतिरेक आक्षेप, निदर्शना, उत्प्रेक्षा हेतु अतिशयोक्ति अप्रस्तुत प्रशसा, श्लेष, स्वभावोक्ति दीपक प्रेय, रसवत ऊर्जस्वि, भाविक, काव्य का सौन्दर्य—अलकार
4 दण्डी का पद-लालित्य 44
वर्षा-वर्णन, शरद् ऋतु, वसन्तागमन नारी सौन्दर्य वाणी महिमा, महाकाव्य की अमरता, शिव की छवि व्यसन का जन्म, असार-ससार, जीवन की असफलता महापुरुष वक्ष के समान
5 काव्यादर्श का समाज 51
6 दशकुमार चरित 55
रचना का देश-काल कथा विन्यास म वर्णित भूगोल
7 दशकुमार चरित कथा-सक्षेप 59
पूर्वपीठिका
चरितभाग
8 दशकुमार चरित का सामाजिक जीवन 81
9 दशकुमार चरित का रचना-सौन्दर्य 85
10 दशकुमार चरित के सुभाषित 93
सहायक ग्रन्थ-सूची 95

1

कवि दण्डी समय और कृतियाँ

सस्कृत-कविया की परम्परा मे दण्डी का नाम वाल्मीकि और व्यास के अनन्तर लोकप्रिय कवियो मे आता है, यद्यपि उनकी रचित काव्य सूक्तियाँ आज विपुल परिणाम मे प्राप्त नही हैं, जो प्राप्त ह वे सूक्तियाँ वही हैं, जो उनके काव्यलक्षण ग्र थ काव्यादश' म उदाहरण क रूप म रचित ह या सकलित है। वैदिक कविया के बाद लौकिक (लोकभाषा) सस्कृत मे काव्य रचना करनेवाले पहले कवि वाल्मीकि हैं, इसीलिए उनको आदि कवि और रामायण का आदिकाव्य कहा जाता है। वाल्मीकि के अनन्तर दूसरे महान कवि वेदव्यास हैं जिन्होन जयकाव्य (महाभारत) की रचना की है। इन दोनो महातपा कवियो के बाद जिन कवियो का नाम बहुत उजागर हुआ वे हैं—दण्डी और कालिदास। कालिदास की वाणी न अपन काव्य सौन्दय के प्रकाश स लोकमानस का इतना भर दिया कि पुन दण्डी का कवित्व उस लोकमानस को आत्मसात् न कर सका। पर किसी समय विदग्धा के हृदय मे वाल्मीकि और व्यास के बाद दण्डी की काव्य वाणी का ही सगीत गूजता था। हो सकता है, तब तक कालिदास का आविर्भाव न हुआ हो। दण्डी की प्रशसा म कहा गया है —

> जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत।
> कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥

यह सूक्ति जैसे दण्डी को सम्बोधित करके कही जा रही है— जगत मे वाल्मीकि द्वारा काव्य रचना किये जान पर 'कवि' सज्ञा का उदय हुआ जब व्यास न जय-काव्य लिखा तब दो कवि हुए तब तक दो कवि ही थे तुम कवि दण्डी के उदय होन पर अब कवि' सज्ञा के बहुवचन का प्रयोग किया जान लगा है। अर्थात दण्डी की प्रशसा म सूक्तिकार यह कहना चाहता है कि वाल्मीकि और व्यास के बाद दण्डी ही तीसरे कवि हैं जो इस रूप मे मान्य हैं।

यह अतिशयोक्ति हो सकती है। कवि और भी हुए होंगे, पर दण्डी की कविता न लोक मानस को प्रभावित किया है—यह सूक्तिकार का मन्तव्य है। इस सूक्ति से दण्डी के काल और उनकी कृतियो का परिचय नही मिलता न हम कह सकते हैं कि व्यास के बाद ही दण्डी हुए थे और व भास, कालिदास आदि से बहुत प्राचीन

है। सूक्ति का अथ इस बात को प्रकाशित करता है कि कभी दण्डी ने काव्य-रचना के क्षेत्र मे अभूतपूव सफलता प्राप्त की थी। कैसी वह सफलता रही होगी, इसका कुछ सकेत उनके काव्यशास्त्रीय ग्रथ 'काव्यादश' के निवचन और उदाहरणो मे मिलता है। उन्होन लिखा है कि कवि प्रतिभा तथा काव्य-रचना की साथकता विदग्ध गोष्ठी मे अपनी कविता को सुनाकर प्रतिष्ठा प्राप्त करन के लिए है—

तदस्ततन्द्रैरनिश सरस्वती श्रमादुपास्या खलु कीर्तिमीप्सुभि ।
कृशे कवित्वेऽपि जना कृतश्रमा विदग्धगोष्ठीषु विहर्तुमीशत ॥

(काव्यादश 1/105)

दण्डी ने काव्यादश के प्रथम परिच्छेद मे अपन युग की रचना प्रवत्तियो, मार्गों और गुणो का विवचन करने के बाद परामश के रूप मे यह कारिका उन युवा कवियो के लिए कही है जो विदग्धगोष्ठी म बैठकर काव्य रचना की नोक झोक करना चाहत है व कहत है इसलिए कीर्ति चाहनवाले किन्तु अल्प प्रतिभा युवा कवियो को आलस्य रहित होकर श्रमपूवक निरन्तर सरस्वती की उपासना करनी चाहिए काव्य रचना का अभ्यास करत रहना चाहिए कवित्व शक्ति के अल्प रहन पर भी रचनाभ्यास से विदग्धगोष्ठियो म ऐसे कवियो को नोकझोक की सामथ्य प्राप्त हो जाती है। कवि गोष्ठी का आनन्द वे ले ही सकत है।

काव्यादश म 'विदग्धगोष्ठी' शब्द क प्रयोग से जिस काल और भारतीय समाज क इतिहास की ओर सकेत मिलता है उसस हम कवि दण्डी के समय का अनुमान लगा सकत है। काव्यादश म जिसे दण्डी न विदग्ध गोष्ठी कहा है वात्स्यायन के कामसूत्र मे इसी को 'सरस्वती समाज' कहा गया है। य सस्थाएँ प्रबुद्ध एव स्वस्थ समाज के आमाद प्रमाद एव बौद्धिक विलास का आयोजन होती थी। सम्भवत उस समय तक सम्राट की राजसभा म विद्वानो और कवियो की गोष्ठियाँ नही हुआ करती थी जिनका वणन राजशेखर (दशवी शती ई०) न अपनी काव्यमीमासा म किया है। राजशेखर का समय तो दशवी शती ई० हो जाता है कामसूत्र के रचयिता वात्स्यायन का समय प्राय पहली शती ईस्वी क आसपास माना जाता है। वात्स्यायन ने कामसूत्र म सरस्वती समाज की चर्चा करते हुए लिखा है कि महीन या पक्ष की किसी निश्चित तिथि को सरस्वती के भवन म उसक सदस्यो का सम्मेलन (समाज) होता है। जिस समाज मे व लोग काव्य समस्या और कला की समस्याओ पर चचा और विमश करत हैं। (कामसूत्र 1/4/15 20)

सरस्वती समाज का ही विकसित रूप विदग्ध गोष्ठी है जिसमे कवल काव्य समस्याओ पर चर्चा हुआ करती थी विदग्धगोष्ठी म कवियो, काव्य के श्रोताओ तथा उनके गुण-दोष क विवचक भावको का सम्मेलन हुआ करता था। काव्यादश के प्रथम परिच्छेद म दण्डी न अपने जमाने के काव्य रचना के प्रमुख विषय मार्ग और गुण क विवचन पर प्रयोगात्मक व्याख्यान किया है, जिसम कविजन अपनी

'प्रतिभा का कौशल प्रकट कर रहे थे। उनके समय की विदग्ध गोष्ठी में वैदर्भ मार्ग और गौड मार्ग तथा उनके प्राण दश गुणों का प्रयोग और प्रदर्शन कविजनों की रचनाओं में होता था, इसके प्रति इतना अधिक अभिनिवेश था कि प्रत्येक कवि अपनी रचना के मार्ग को नवीन कहता था। दण्डी ने इस स्वीकार भी किया है और वे कहते हैं— वैदर्भ और गौड ये काव्य-रचना के दो भिन्न भिन्न मार्ग (शैलियाँ) हैं मैंने जो निरूपण किया है उसमें यह स्पष्ट हो गया है उनके भी अनेक भेद हो सकते हैं तथा प्रत्येक कवि काव्यमार्ग के प्रयोग में नवीनता ही रखता है जिसे बताया जाना असम्भव है। जैसे ईख दूध, गुड (मधु) आदि की 'मधुरता में महान् अन्तर है तो भी इस अन्तर का सरस्वती द्वारा भी व्याख्यान नहीं किया जा सकता।" (काव्यादर्श 2/101-102)

इस प्रकार काव्य रचना में दण्डी का युग मार्ग तथा गुण का आधार बनाकर रचना सौन्दर्य के प्रदर्शन का था जिसकी परिचर्चा विदग्ध गोष्ठियों में हुआ करती थी। कविजनों को विदग्धगोष्ठी में बठन की क्षमता प्राप्त हो, इसके लिए उन्होंने 'काव्यादर्श की विशेष रूप से उसके प्रथम परिच्छेद की रचना की है।

यही नहीं, दण्डी ने काव्य मार्ग (काव्य रचना सरणि) के प्राण दश गुणों का विवेचन किया है, ये गुण हैं—श्लेष, प्रसाद समता माधुर्य सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारत्व, ओज कान्ति, समाधि। गुणों के ये नाम और उनका स्वरूप क्रमश विकसित हुए हैं इनके पूर्व रूपों की चर्चा शकक्षत्रप रुद्रदामन के शिलालेख में हुई है—स्फुट-लघु मधुर चित्र-कान्त शब्द समयादारालङ्कृत गद्य पद्य (काव्यविधान प्रवीणेन)। रुद्रदामन के इस शिलालेख का समय 150 ई० है।

अपभ्रंश के जैन कवि स्वयम्भू ने हरिवंशपुराण' की रचना की है। स्वयम्भू का समय आठवीं शती ई० है। उसने अपने काव्य की उत्थानिका में दण्डी का नाम लिया है—"मुझे इन्द्र से व्याकरण, भरत से रस व्यास से कथा प्रबन्ध, पिंगल से छन्द-प्रस्तार, भामह और दण्डी से अलकार और बाण से घणघणत्कार पूर्ण अक्षराडम्बर प्राप्त हुआ'—

इन्दण समप्पिउ वायरणु । रस भरहे वास वित्थरणु ॥
पिंगलेण छन्दपयपत्थारु । भामह दण्डिणिहि अलकारु ॥
बाणेण समप्पिउ घणघणेउ। तें अक्खर डम्बर घणघणउ ॥

अत दण्डी ने अपने काव्यादर्श में कवियों की रचना विषयक जिन प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है उन प्रवृत्तियों के मूल विस्तार तथा प्रचार का आकलन करते हुए उनका समय दूसरी शती ईस्वी के बाद तथा आठवीं शती ई० के पूर्व अनुमान किया जाता है। इस आकलन में यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि वात्स्यायन के कामसूत्र का सरस्वती-समाज ही समय के अनुसार विदग्धगोष्ठी के रूप में परिणत हो गया था। सरस्वती समाज में काव्य-रचना तथा दूसरी सभी

कलाओं की चर्चा होती थी। विदग्धगोष्ठी में केवल काव्य रचनाविषयक नाव झाक ही की जाती थी। रुद्रदामन् के शिलालेख में काव्यरचना विषयक शब्द सिद्धात स्फुट लघु मधुर कात आदि विकसित होकर दण्डी के अव्यावृत, प्रसाद, माधुर्य, कात आदि गुणों के रूप में सामने आये हैं। यदि स्वयम्भू कवि द्वारा दण्डी-बाण के उल्लेख को कालक्रम से प्रेरित माना जाय तो उनके अनुसार दण्डी की स्थिति बाणभट्ट के पूर्व निर्धारित होती है। दण्डी स्वत काव्य-रचना के क्षेत्र में वैदर्भ मार्ग के कवि हैं उन्होंने काव्यादर्श के प्रथम परिच्छेद में वैदर्भ काव्य के प्रति ही अपना अभिनिवेश प्रकट किया है। उन्होंने लिखा है कि काव्य रचना में वाणी के अनेक मार्ग हैं परस्पर उनके सूक्ष्म भेद हैं पर जो बहुत स्फुट अन्तर दिखायी पडता है उसके अनुसार वैदर्भ और गौड इन दो काव्यमार्गों का व्याख्यान काव्य विचक्षण जन करते हैं। श्लेष प्रसाद माधुर्य आदि दश गुण वैदर्भ मार्ग के प्राण हैं, गौड मार्ग में ये गुण कुछ अन्तर के साथ या आंशिक रूप से पाये जाते हैं अथवा नहीं भी पाये जाते हैं। (काव्यादर्श 1/40 42) अर्थात वैदर्भ मार्ग ही काव्य रचना की समग्र पद्धति है। काव्य-रचना में वैदर्भ मार्ग का नामकरण दाक्षिणात्य कवियों के काव्य प्रयोगों को आदर्श मानकर किया गया है, वैसे वैदर्भ मार्ग के कवियों का क्षेत्र समूचा मध्य देश है संस्कृत काव्य रचना के क्षेत्र में इसी को दाक्षिणात्य सम्प्रदाय कहा गया है। कालिदास वैदर्भ मार्ग के ही कवि हैं बाद में वैदर्भ काव्य-पद्धति संस्कृत कवियों में इतनी प्रिय हुई है कि कश्मीर के कवि कल्हण बिल्हण आदि ने भी अपने प्रबन्ध काव्य वैदर्भ काव्यमार्ग की सरणि में लिखे हैं। आचार्य कुन्तक ने अपने वक्रोक्तिजीवित ग्रन्थ (ग्यारहवीं शती ई०) में वैदर्भ मार्ग को ही सुकुमार मार्ग कहा है तथा कालिदास को इस मार्ग का श्रेष्ठ कवि माना है। दण्डी के काव्यादर्श के काव्योदाहरण वैदर्भ काव्य के ही आदर्श हैं। दण्डी निश्चित रूप से वैदर्भ (दाक्षिणात्य) काव्य रचना के क्षेत्र में आते हैं।

दण्डी वैदर्भ काव्य मार्ग के क्षेत्र के थे तथा बाणभट्ट (सातवीं शती ई०) से पूर्व थे इतना निश्चय उपयुक्त विवेचन से हो जाता ही है। साथ ही एक संकेत यह भी मिलता है कि वे कालिदास के पूर्ववर्ती थे उन कालिदास के जो गुप्त सम्राटों के राज्य शासन का परिचय रखते थे जिन्होंने रघुवंश महाकाव्य की रचना की है। बाणभट्ट ने कालिदास की प्रशस्ति गायी है उनका समकाल रविकीर्ति भी ऐहोल शिलालेख में भारवि-कालिदास का उल्लेख आदर के साथ करता है। यदि दण्डी के पूर्व कालिदास हुए होते तो दण्डी ऐसे सरस्वती सिद्ध महाकवि का उल्लेख अपने काव्यादर्श में करने से न चूकते क्योंकि उन्होंने काव्य प्रबन्ध की श्रेष्ठता की दृष्टि से ही काव्यादर्श के प्रथम परिच्छेद में प्राकृत भाषा के महाकाव्य 'सेतुबन्ध' (काव्यादर्श 1/34) तथा भूतभाषा में लिखे कथा ग्रन्थ बृहत्कथा (1 38) का उल्लेख किया है।

इन प्रमाणो से हम इस निष्कष पर पहुँचते है कि दण्डी न अपना 'काव्यादश' चौथी शताब्दी ईस्वी मे लिखा होगा। दण्डी के रचित दो ग्रथ हैं जिसस उनकी लोकप्रियता और साहित्य जगत मे उनके योगदान की अमरता अक्षुण्ण है—

(1) काव्यादर्श—काव्यशास्त्र का लक्षण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के विवचनो से इसके रचयिता के देश काल का बहुत कुछ परिचय मिलता है।

(2) दशकुमारचरित—यह कथा ग्रन्थ है, जिसम दश राजकुमारो की प्रेम कथाएँ और उनके देश भ्रमण के रोचक एव रोमाचकारी वत्तान्त हैं। इन कथाओ के माध्यम स उस युग के समाज का सजीव चित्र सामने आता है।

इन दो ग्रथो के अतिरिक्त दण्डी के नाम स तीन अन्य ग्रथो का भी नाम लिया जाता है—

(1) छन्दोविचिति—छन्द शास्त्र का लक्षणग्रन्थ है जो अप्राप्य है।

(2) अवन्तिसुन्दरी कथा कथा ग्रन्थ है जिसम लेखक अपने को भवभूति का वशज कहता है।

(3) द्विसन्धान महाकाव्य—इसका उल्लख दण्डी के नाम से भोजराज न शृगार प्रकाश म किया है पर यह प्राप्त नही है। इसमे रामायण, महाभारत दोनो कथाओ का एक साथ श्लेष द्वारा वणन किया गया है।

ये सभी रचनाएँ एक ही दण्डी की हैं यह सम्भव नही है ये अपने म ही अपन भिन्न भिन्न देश काल की सूचना दती हैं।

अवन्तिसुन्दरी' का प्रकाशन 1954 ई० म त्रिवेन्द्रम विश्वविद्यालय से हुआ है और इस आचाय दण्डी की रचना कहा जाता है कुछ विद्वान इसे दशकुमार चरित' का ही एक भाग कहते हैं। वस्तुत अवन्तिसुन्दरी कथा का लखक 'दशकुमार चरित' के रचयिता के समान समथ रचनाकार नही है। उसके ऊपर बाणभट्ट का अमिट प्रभाव है। उसन अवन्तिसुन्दरी कथा' मे पात्रो के नाम तथा कथाश तक बाणभट्ट की कादम्बरी से लिये है। केयूरक कादम्बरी गन्धर्व, अप्सरा पात्र इसमे हैं, जो कादम्बरी के है। बाणभट्ट की शैली की अनुकरण करने का असफल प्रयत्न इसका लखक करता है। सम्भवत वह दाक्षिणात्य ह उसन उत्तर भारत के भूगोल की मान्यताओ के सम्बन्ध म नयी व्यवस्था दी है। उसने लिखा है—सरस्वती तथा दृषदवती के बीच की भूमि ब्रह्मावत है, कुरुक्षत्र, मत्स्य पान्चाल शूरसेन ये ब्रह्मर्षि दश हैं। पूव और पश्चिम समुद्र सनानियोक अन्तारल म आर्यावत है। आगे वह लिखता है कि कृष्णसार मग की विहार-भूमि म्लेच्छ भोग रहे है और वह ब्राह्मणो के रहन के लिए अनुपयुक्त हो गयी है। आर्यावत म पुष्पपुर है। (अवन्तिसुन्दरी पृष्ठ 194) देश के भूगोल की ये मान्यताएँ तथा म्लेच्छो द्वारा कृष्णसार भूमि खड को अपवित्र करन की बात 'दशकुमार चरित' म वर्णित भूगोल तथा देश की राजनीतिक दशा के विरुद्ध है। यह सातवी शती के

अ त म रचित 'अवन्तिसु दरी' के अनुकूल अवश्य है। दशकुमारचरित' निश्चित ही इसके बहुत पूर्व की रचना है। इसलिए 'अवन्तिसुन्दरी कथा' उस दण्डी की कृति नहीं है, जिसने काव्यादर्श या दशकुमारचरित की रचना की है। निष्कर्ष यह है कि दण्डी की कीर्ति का विपुल विस्तार उनके दो ग्रन्थों पर आधृत है— 'काव्यादर्श' एवं 'दशकुमार चरित'।

लम्बी अवधि म दण्डी नाम के कई कवियों के होने स दण्डी के कृतित्व का स्पष्ट निर्धारण अतीत में भी नहीं हो सका, इसकी स्वीकृति राजशेखर की इस उक्ति से भी होती है, उन्होंने लिखा है—

त्रयोऽग्नयस्त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो गुणा ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥
(सूक्ति मुक्तावली, 4/74)

उसका सामान्य अर्थ है कि जैसे तीनों लोक म तीन अग्नि, तीन वेद (ऋक यजु साम) तीन देव (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) तीन गुण (सत्त्व रज तम) विख्यात है वैसे ही दण्डी कृत तीन प्रबन्धों की लोक म कीर्ति गायी जाती है। अर्थात हम यह कह सकते है कि जैसे अग्नि, वेद, देव गुण—सभी तीन होकर भी एक ही भास होते है रहस्यमय है, वैसे ही दण्डी के तीन प्रबन्धों का कृतित्व भी रहस्यमय है। ठीक निश्चय नहीं है कि ये प्रबन्ध एक ही दण्डी के है।

आगे हम दण्डी के काव्यादर्श तथा दशकुमारचरित रचनाओं का परिचय और उनम चित्रित अतीत के देशकाल को प्रत्यक्ष करन का प्रयत्न करेंगे। साथ ही दण्डी के उस योगदान का परिचय देना चाहेंगे, जिसके कारण वे संस्कृत साहित्य म अमर है।

दण्डी की लोकप्रियता

दण्डी सवप्रथम कवि थे तदनन्तर लक्षणकार। उनका काव्यादश केवल आचाय द्वारा काव्य सिद्धान्ता का निरूपण नही है वरञ्च कवि द्वारा किय गय काव्य-प्रयागा का निदशन है। सम्भवत यही कारण था कि कवि दण्डी का 'काव्यादश' मध्यदेश की सस्कृत काव्य परम्परा म बहुत लाकप्रिय हुआ। काव्यादश न काव्य रचना म वदभ माग अथवा वैदभ काव्य-सरणि को ऊँची प्रतिष्ठा दिलान म महत्त्व-पूण यागदान किया और सहज प्रतिभा क कवियो को इस आर काव्य रचना के लिए आकर्षित किया। काव्य रचना के आदश क लिए नय कवियो ने इस ग्रन्थ के गुण-सिद्धान्ता तथा अलकार प्रयोगा को बहुत आदर दिया हागा। निश्चित रूप से य कवि वदभ माग अथात दाक्षिणात्य परम्परा के कवि थे आगे चलकर य दाक्षिणात्य कवि जन राजा और उसकी राजसभा की विशिष्ट शोभा के रूप म प्रतिष्ठित हुए भत हरि ने इस रूप म इनकी चर्चा की है—

अग्रे गीत सरसकवय पाश्वतो दाक्षिणात्या
पष्ठे लीलावलयरणित चामरग्राहिणीनाम्।

(अर्थात् यह राजा का विभव था कि आगे-आग रसिक कवि अपना गीत पाठ कर रह हैं पाश्व म दाक्षिणात्य कविया का काव्य-पाठ हाता है, पीछे की ओर चामरग्राहिणियो के हाथ के ककण विलास के साथ मधुर ध्वनि कर रह हैं।) काव्यादश के प्रथम परिच्छेद मे दण्डी ने अपनी मान्यताओ के पक्षधर के रूप म दाक्षिणात्य कवियो का नाम लिया है—

इत्यादिबन्धपारुष्य शैथिल्य च नियच्छति।
अतो नवमनुप्रास दाक्षिणात्या प्रयुञ्जते॥

(काव्यादश 1/60)

अर्थात जिस अनुप्रास के प्रयोग से पदो के विन्यास म बन्धपारुष्य और शिथिलता उत्पन्न होती है इस प्रकार के अनुप्रास का प्रयोग दाक्षिणात्य (वदभ माग के) कवि नही करत। दण्डी ने गौड कवियो को पौरस्त्य अथवा अदाक्षिणात्य भी कहा है।

दण्डी की मान्यता के पक्षधर दाक्षिणात्य कवियो न 'काव्यादश' के लक्षणो

को बहुत आदर दिया और इस आदर का विस्तार उनके द्वारा काव्य रचना के क्षेत्र मे पूरे दक्षिण भारत मे बढता गया तथा समुद्र पार सिंहलद्वीप मे भी काव्य रचना क लक्षणा को जानने के लिए कवियो न काव्यादश' का अध्ययन किया। इस लोक प्रियता के फलस्वरूप कनड तथा सिंहली भाषा मे काव्यादश' का अनुवाद नवी शती ईस्वी मे किया गया। राष्ट्रकूट के राजा नपतुग अमोघवष (815 875 ई०) ने कन्नड भाषा म काव्यादश के अनुवाद क रूप म कविराजमाग' ग्रथ की रचना की। सिंहली भाषा म लका के राजा शिला मेघवण (846 866 ई०) नेकाव्यादश का भाषा तर सिय बस लकर (स्वभाषालकार) नाम से किया, उन्होंने उसकी प्रस्तावना म कहा कि दैवीभाषा मे अलकार का जो ग्रथ है, सिंहल के लोग सस्कृत से अनभिज्ञ होने के कारण उसे नही पढ सकते, अत मैं उसे स्वभाषा मे कहता हू।'

अपनी लोकप्रियता के कारण ही दण्डी का का यादश अ य बौद्धग्रथो के साथ तिब्बत पहुँचा और वहा तरहवी शती ईस्वी मे शाङ्वासी आचाय वज्रध्वज (दरग्यल) न इसका अनुवाद भोटभाषा मे किया। काव्यादश का यह भोट-अनुवाद 1939 इ० म श्री अनुकूलचन्द्र बनर्जी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित किया है।

कवि दण्डी की काव्य-सूक्तियाँ काव्यादश क अनुवाद के साथ सिंहल तथा तिब्बत म अनूदित होकर पढी गयी देश के कर्णाटक प्रदश म ही इनकी सूक्तियो का जो अनुवाद कन्नड भाषा मे हुआ, वह भी का यादश के लिए कम गौरव की बात न थी क्योंकि सस्कृत काव्यशास्त्र के दूसरे लक्षण ग्रथो का यह आदर और सौभाग्य नही प्राप्त हुआ। टीकाए उनकी अवश्य हुइ पर दूसरी भाषा मे अनुवाद नही हुए हैं। सिंहल तथा तिब्बत मे काव्यादश के अनुवाद स दण्डी के कृतित्व का ऐतिहासिक मूल्य सिद्ध होता है। उस युग मे देश के बाहर सस्कृत की जो रचनाए पढी गयी उनमे रामायण महाभारत, बुद्धचरित बहत्कथा पचतत्र के साथ यह गौरव काव्यादश को प्राप्त है। इसके पीछे का यलक्षण के क्षेत्र मे का यादश की युगा तरकारी मा यता है। इस सम्बन्ध मे आगे परिचय दिया जाएगा।

टीकाएँ भी काव्यादश की अनेक है। इन टीका लिखनवालो मे भारत के प्राचीन अर्वाचीन विद्वान तो हैं ही, सीलोन के रत्नश्रीनान नका यादश की रत्नश्री टीका लिखी है। पन्द्रहवी शती मे वर्मा देश म बौद्ध भिक्षुसघ को वहाँ की बौद्ध उपासिका रानी ने कुछ महत्त्वपूण दान दिये थे जिसमे बहुत स ग्रथ भी थे। दान की स्मृति को सुरक्षित रखन के लिए पेगन म अभिलेख अकित कराया गया था। उसम तीन ग्रथ दण्डी के टीका-ग्रथ हैं।

काव्यादश के प्रथम छन्द म दण्डी ने सरस्वती की वन्दना की है—

चतुमुखमुखाम्भोजवनहस वधूमम।
मानस रमता नि य सवशुक्ला सरस्वती॥

ब्रह्मा के मुखरूपी कमलवन म विहरनेवाली हस की वधू शुक्लवण सरस्वती मेरे मानस म सदा रमण कर।

कवयित्री विज्जका न इसका प्रतिवाद किया वह कहती है कि सरस्वती ता मैं ही हूँ जा नीलकमल के समान श्यामल हूँ, मुझको न जानने के कारण दण्डी न वृथा ही सरस्वती का शुक्लवण कह दिया है—

नीलोत्पलदलश्यामा विज्जका मामजानता।
वथव दण्डिना प्रोक्त सवशुक्ला सरस्वती॥

इस उक्ति से विज्जका का अपना अभिमान प्रकट हो रहा है, पर दूसरी ओर यह उक्ति दण्डी की लोकप्रियता का भी प्रमाण है। विख्यात कवि की उक्ति का ही प्रतिवाद किया जाता है। कुछ विद्वान विज्जका को दण्डी का समकाल ही मानते हैं, विज्जका की उक्ति समकालिक कवि के प्रति है।

अपभ्र श तथा हिन्दी क प्राचीन कवियो म दण्डी के प्रति आदरभाव समान रूप स बना रहा तथा दण्डी क कतित्व न काव्य रचना के क्षेत्र म उनका पथ प्रदशन किया है। अपभ्र श का कवि स्वयभू अपन 'पउमचरिउ' (रामायण) का य म भी कहता है कि स्वयम्भू बुधजना के पद को व दना करता है, मेरे समान दूसरा कुकवि नही जो का य लिखने तो चला है पर जिसन व्याकरण की व्युत्पत्ति नही जानी वत्ति सूत्र की याख्याए नही की है। पाच महाकाव्यो को नही सुना। भरत को नही पढा, लक्षण और छ द नही जाने पिगल के छन्दप्रस्तार को नही जाना और भामह दण्डी के अलकारो का ज्ञान जिसको नही है वह काव्य रचना कैस करगा? स्वयभू की इस उक्ति पर हमारा ध्यान इस बात की ओर जाना चाहिए कि कवि दष्टि मे काव्य रचना के लिए व्याकरण, वत्ति सूत्र महाकाव्य को पढने के साथ जिन महान् कृतिकारो को पढना आवश्यक है उनमे है भरत, पिगल भामह और दण्डी। काव्य रचना की सफलता के लिए प्राचीन काल मे युवा कवि कवि दण्डी क काव्यादश को अवश्य पढना चाहता था।

हिन्दी के मध्यकाल क प्रसिद्ध महाकवि केशवदास (1555 1617 ई०) न कविप्रिया' नामक अलकारग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ उन्होने ओरछा नरेश की विदुषी प्रेयसी नत्यागना प्रवीण राय का काव्य रचना की शिक्षा दने के लिए लिखा था। कविप्रिया ग्रथ दण्डी के काव्यादश के लक्षणा का ही लेकर निखा गया है। उसमे दण्डी के अलकार निरूपण का ही अनुसरण हुआ है।

अठारहवी शती ई० मे ही एक अन्य हिन्दी कवि राजकवि केस न अपनी कृति माधवानल नाटक म देवी दुर्गा द्वारा वरदान प्राप्त करनेवाले कवियो म प्रथम दण्डी का उल्लेख किया है—

कित रक राजा किये देवि दुर्गे।
करे कवि दण्डी गनौ कालिदास।

जयदेव भारवि भाष्यौ प्रकाम।
निवाजे सर्व तू गनाऊँ कहाँ लौं।
सुरसौं नरेसौं निगमौ जहाँ लौं॥

कालिदास, भारवि माघ आदि महाकवियों के काव्यों के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने काव्य में अलंकारों के निर्धारण में दण्डी के लक्षणों का प्रमाण रूप में लिया है। कामन्दकीय नीतिसार के टीकाकार ने आह्लादिनी वाक् के सम्बन्ध में दण्डी के माधुर्य गुण का उदाहरण देकर दण्डी के गुण विवेचन की लोकप्रियता प्रमाणित की है। (कामन्दकीय नीतिसार 3/22) काव्यशास्त्रीय चिन्तन में परवर्ती आलंकारिकों ने दण्डी के विशिष्ट विवेचना के लिए उनका उद्धत किया है। 'सरस्वती कंठाभरण' के रचयिता भोज ने अपने ग्रंथ के विवेचन में न केवल दण्डी का अनुसरण किया है बल्कि जहाँ-तहाँ दण्डी की कारिकाओं को ही लक्षण के रूप में रखा है। साहित्य मीमांसाकार, व्यक्तिविवेक के व्याख्याकार राजानक, अभिनवगुप्त दण्डी के लक्षणों का उद्धृत करते हैं 'गद्यपद्यमयी काचित चम्पूरित्य भिधीयते' (गद्य पद्य की सम्मिलित विधा की मिश्रित कोई रचना चम्पूकाव्य कही जाती है)। दण्डीकृत चम्पूकाव्य का यह लक्षण अभिनवगुप्त ने प्रमाण के रूप में उद्धत किया है। (ध्वन्यालोकलोचन 3/7)।

दाक्षिणात्य काव्यमार्ग चिन्तन प्रधान कम है वह काव्य प्रयोगों के प्रति अधिक अभिनिविष्ट रहा है। दण्डी ने काव्यादर्श के प्रथम परिच्छेद में मार्ग तथा गुण के विवेचन में वैदर्भ तथा गौड मार्ग के कवियों के भिन्न भिन्न काव्यप्रयोगों का निदर्शन देकर काव्य रचना की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है लक्षण के तात्त्विक विवेचन को अधिक महत्त्व नहीं दिया है। यही बात द्वितीय परिच्छेद के अलंकार निरूपण में भी है। उपमा अलंकार के बत्तीस भेद उन्होंने दिखाए हैं, वस्तुतः ये भेद नहीं हैं, उपमा के विविध प्रयोग है। यही बात दूसरे अलंकारों के निरूपण में भी है। दण्डी के काव्यलक्षण की यह विशेषता गौड या औदीच्य (कश्मीरी) काव्यशास्त्रियों के विवेचन में कहीं देखने को नहीं मिलती है सभी ने तात्त्विक विवेचन के प्रति अधिक रुचि दिखायी है काव्यप्रयोगों के निदर्शन से दूर होते गये हैं। यही कारण है कि मध्यदेश के काव्य रचनाकारों में दण्डी एक लम्बे युग तक लोकप्रिय बने रहे हैं, सोलहवीं-सत्रहवीं शती में आचार्य केशवदास तक तो उनके लोकप्रिय होने का प्रमाण मिलता ही है। केवल काव्यशास्त्र का ज्ञान करने के लिए विद्वानों ने अवश्य आनन्दवर्धन मम्मट या विश्वनाथ के ग्रन्थों को पढ़ा उनकी टीकाएँ की हैं कवियों ने नहीं। कवियों के प्रिय आचार्य कवि दण्डी रहे है।

3
काव्यादर्श

काव्यादश दण्डी की प्रथम किन्तु महान् कृति है। इसको उन्होंने कवियों की शिक्षा के लिए काव्यलक्षण की व्याख्या के रूप म लिखा है। इसम तीन परिच्छेद हैं—

(1) प्रथम परिच्छेद म मुख्य रूप से ससार म वाणी की महिमा का स्थापन, काव्य रचना के दो विशिष्ट माग वदभ और गौड तथा इन मार्गों के प्राणभत दश गुणो के प्रकारो का विवेचन है इसके साथ ही उस समय किन किन भाषाओ म काव्य रचना की जाती रही, इसका उल्लेख है। गद्य और पद्य की दष्टि स काव्य के प्रकार, महाकाव्य का लक्षण तथा अपन समय की प्रसिद्ध कृतियो का उल्लख भी ग्रन्थकार करता है।

(2) द्वितीय परिच्छेद म काव्य की शोभा बढानवाले अलकारो (उक्ति वैचित्र्यो) का प्रयोगात्मक विवेचन ग्रन्थकार न किया है। उसने उपमा, रूपक दीपक आदि अलकारो क भेदो की लम्बी सूची दी है पर य भेद अलकार प्रकार कम हैं काव्य प्रयोग ही अधिक है। ग्रन्थकार न अलकार प्रकारात्मक समस्त काव्य उक्तियो का मुख्य रूप स दो भागो म विभक्त कर दण्डन की अपनी मौलिक दष्टि का परिचय दिया है य दो वग है—स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति। भिन्न द्विधा स्वभावोक्तिवक्रोक्तिश्चेति वाङ मयम। (काव्यादश 2/363)

(3) ततीय परिच्छेद म चित्रमाग—यमक अलकार चित्रबध और प्रहेलिकाओ तथा उनके दोषो का निरूपण है। कतिपय समीक्षक एव विद्वान् काव्यादश के प्रथम परिच्छेद म विवचन और उसम ग्रन्थकार दण्डी की दष्टि का आकलन करत हुए तृतीय परिच्छेद के विवेचन का उनकी प्रवत्ति स भिन्न मानत हैं। तथा ततीय परिच्छेद का बाद मे किसी के द्वारा लिखकर प्रक्षिप्त किया मानते हैं, जो काव्यादश की अत्यन्त लोकप्रियता के कारण उसम जोड दिया गया।

प्रथम परिच्छेद मे उदाहरण सहित कारिकाओ की सख्या 105 द्वितीय परिच्छेद म 368 है। दोनो को मिलाकर कुल सख्या 473 होती है। इसके अतिरिक्त ततीय परिच्छेद की कारिकाओ की सख्या 187 है।

आगे काव्यादश मे आये मौलिक विवेचना का सरल परिचय दिया जा रहा

है जिन विवेचनाओं के कारण दण्डी का काव्यादर्श युगान्तरकारी लक्षणग्रंथ सिद्ध हुआ तथा उसकी लोकप्रियता देश से विदेश तक पहुँची। काव्य-प्रेमियों के अतिरिक्त दूसरे शास्त्र प्रेमियों ने भी इसे पढ़ा।

काव्यशास्त्र में विदग्ध गोष्ठी का अभिलेख

काव्यादर्श के प्रथम परिच्छेद में दण्डी ने मुख्य रूप से वैदर्भ तथा गौड दो काव्य-मार्गों में होनेवाले प्रयोगों का परिचय दिया है यह परिचय उन काव्य-मार्गों के प्राणभूत दश गुणों की व्याख्या है। दण्डी ने इन गुणों का प्रयोग वैदर्भ मार्ग के कवि कैसे करते हैं और गौड मार्ग के कवि कैसे करते हैं—इस भेद को काव्यों का उदाहरण देकर समझाया है। वे सिद्धान्त और प्रयोग दोनों की व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं कि काव्यवाणी के मार्ग अनेक हैं, पर इनमें वैदर्भ और गौड इन दो काव्यमार्गों का अत्यन्त स्फुट भेद देखने को मिलता है।

वैदर्भ मार्ग के प्राण दश गुण हैं—

(1) श्लेष—वर्ण विन्यास में शिथिलता का अभाव, शिथिलता अल्पप्राण अक्षरों का विन्यास है।

(2) प्रसाद—प्रसिद्ध अर्थवाले पदों के प्रयोग से अनायास अर्थ बोध की सुन्दरता प्रसाद गुण है।

(3) समता—वह गुण है जिसमें काव्य को जिस बन्ध से आरम्भ करें उसी बन्ध से समाप्त करें, ये बन्ध हैं मृदु स्फुट और दोनों से मिश्रित वर्णों का विन्यास।

(4) माधुर्य—जहाँ वर्ण विन्यास तथा वस्तु अर्थ दोनों में मन को सिक्त कर देने वाली रसवत्ता हो इसमें ग्राम्य-अर्थ का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

(5) सुकुमारता—कोमल वर्णों का विन्यास जिसमें निष्ठुराक्षरों का प्राय अभाव हो सुकुमारता गुण है।

(6) अर्थव्यक्ति—जिसमें वाक्य के अर्थ को समझने के लिए अन्यत्र से प्रसंग न ले आना पड़े अर्थात् अर्थ का अनेयत्व अर्थव्यक्ति है।

(7) ओज—समासबहुल प्रयोग ओजोगुण होता है, इसमें कहीं गुरु वर्णों का बाहुल्य कहीं लघु वर्णों का बाहुल्य, कहीं दोनों का मिश्रण—इस तरह ओजोगुण के अनेक प्रकार हैं। ओजोगुण का प्रयोग गद्य-काव्य में होता है, लेकिन अदाक्षिणात्य अर्थात् गौड कवि पद्य में भी इसका प्रयोग करते हैं।

(8) उदार—जहाँ काव्यार्थ के प्रयोग से वर्णनीय वस्तु के लोकोत्तर गुण का बोध हो, वह उदार गुण है।

(9) कान्त—लोक सम्मत अर्थ का लंघन नहीं करें, जहाँ सभी को प्रिय लगने वाले काव्यार्थ का प्रयोग किया जाय वह कान्त गुण है। कान्त गुण वार्ता

तथा वणना काव्यो म प्रयुक्त होता है।

(10) समाधि—अय के धम का जहाँ अयत्र आरोप कर वणन किया जाय, वह समाधि गुण है। वस्तुत प्रकृति म मानवीय गुणो का वणन कर काव्य की प्रस्तुति करना ही समाधि गुण है।

दण्डी ने वदभ माग के प्राण दश गुणो का ही वणन किया है। वस्तुत उनकी दश ही सीमा नही हो सकती। इनक प्रति दृष्टिभेद भी हो सकता है। पर गुणो का यह स्वरूप दण्डी के युग की विदग्ध गोष्ठी का सत्य था। आचाय कुन्तक (ग्यारहवी शती ई०) न वक्रोक्तिजीवित मे इ ही मार्गों और गुणो को लकर इनकी व्याख्या को और भी चारुतर बनाकर उपस्थित किया है। उ हान वैदभ माग को सुकुमार माग, गौड को विचित्र माग कहा है और एक तीसरे मध्यम माग की भी व्याख्या की है। इसके साथ काव्य के छह गुण बताये ह तथा प्रत्यक माग म इन गुणो का स्वरूप भि न है। ये छह गुण हैं—माधुय, प्रसाद, लावण्य आभि जात्य, औचित्य, सौभाग्य। अ तिम दो औचित्य और सौभाग्य गुण तीना मार्गो म एक समान हाते है।

दण्डी न गुणो की व्याख्या विदग्ध गोष्ठियो के काव्य प्रयोग। क रूप म की है। उदार, का ति तथा समाधि गुणो की विशेषता उनके काव्याथ प्रयोगा म है, शेप सात गुण श द प्रयागा एव वर्णो के वि यास पर आधत हैं। विदग्ध गाष्ठिया मे वदभ तथा गौड माग परम्परा के कवि न गुणो का प्रयोग अपने अपन सिद्धा ना नुसार कैसे करते थे इस बात को दण्डी ने उनके सम्मत काव्य उक्तियो का उदाहरण देकर भलीभाँति स्पष्ट किया है, इसीलिए दण्डी का यह काव्यादश उनके युग की विदग्ध गोष्ठी का एतिहासिक अभिलेख है।

वदभ तथा गौड माग के का यो मे एक ही गुण की मा यताएँ किस प्रकार भि न थी आचाय दण्डी न लक्षण के साथ ही प्रयागात्मक उदाहरण दकर इस स्पष्ट किया है।

(1) श्लेप गुण म वैदभ कवि अल्पप्राण अक्षरो का प्रयोग न ी करत, इस प्रकार व का य ब ध को उल्वण बनात हैं।

वणनीय अथ है—

मालती की माला पर सौरभ के लोभ से भौंरे आ गय।

वदभ कवि इस अथ को काव्य-वाणी म इस प्रकार प्रस्तुत करेंग —

मालतीदाम लङ्घित भ्रमर ।—(काव्यादश, 1/44)

पर गौडकवि, जो अनुप्रास प्रिय होत हैं, अल्पप्राण अक्षरो का प्रयाग कर इस अथ का इस प्रकार काव्य म प्रस्तुत करत हैं—

मालतीमाला लालालिकलिला (का यादश, 1/43)

दण्डी की दृष्टि म यह शिथिल (श्लेप गुण विहीन) का य ब ध है और उनको

प्रिय नही है।

(2) प्रसिद्ध अथ का प्रयोग ही प्रसाद गुण है, वैदभ माग क काव्य की यह मुख्य पहचान है दण्डी ने वैदभ-सम्मत प्रसाद गुण का उदाहरण दिया है—

इ दोरि दीवरद्युति।
सम्म लम्मी तनोति ॥—(काव्यादश, 1/45)

(च द्रमा का नीलकमल-सा चमकता लाछन उसकी शोभा का विस्तार देता है।) 'अभिज्ञानशाकु तल' म भी इस अथ को वैदभसम्मत काव्यमाग म निबद्ध किया गया है—

मलिनमपि हिमाशोलक्ष्म लक्ष्मी तनाति।

गौड कवि व्युत्पत्ति प्रिय हात है और व अनतिरूढ (अथ क लिए अप्रसिद्ध) श दो का भी प्रयोग पस द करत है जिनका अथ व्युत्पत्ति द्वारा निकल आता हो, अत उक्त अथ को वे इस प्रकार कहना पस द करते है—

अनत्यजुनाब्ज मसदशाङ्को वलक्षगु। (काव्यादश, 1/46)

(अनत्यजुन = जो धवल न हो अब्ज म = नील कमल के समान लाछनवाला वलक्षगु = शुभ्र किरणोवाला च द्रमा, शोभित हो रहा है।)

(3) समतागुण मे वैदभ कवि जिस वण वि यास स काव्याक्ति का आरम्भ करत हैं उसी स समाप्त भी करत है, जस मदुवर्णों के समता गुण का उदाहरण है—

कोकिलालाप वाचाला मामति मलयानिल।(काव्यादश, 1/48)

(कोकिलो की कूक की मधुर ध्वनि लिय हुए मलय पवन मेरी ओर आ रहा है।)

विकट (स्फुट) वण वि यास के समता गुण की का याक्ति इस प्रकार होगी—

उच्छलच्छीकराच्छाच्छ निझराम्भ कणोक्षिन। (काव्यादश, 1 48)

(तज धारा म जिमक जल के छोटे ऊपर उड रहे हैं अत्य त स्वच्छ निझर के जल कणा से सिक्त होकर मलय पवन मरी ओर आ रहा है।)

मदु तथा स्फुट वर्णों के वि यास स मिश्रित वैदर्भो का समता गुण यह है—

च दनप्रणयोदर्गा धम दा मलयमारत। (का यादश, 1/49)

(च दन के ससग स सौरभ-भरा अत धीरे धीरे बहता मलय पवन मरा आर आ रहा है।)

यहाँ आरम्भ म मदु तथा उत्तराद्ध म मदु वर्णों के बीच स्फुट वर्णों का प्रयाग ह। कुछ-कुछ इसी अथ को गौड माग क कवि किस प्रकार की काव्योक्ति म कहना पस द करते हैं उसका उदाहरण दण्डी दत है—

स्पधत रुद्धमदधर्यो वररामामुखानिले। (काव्यादश, 1/49)

(मेरे धैर्य को तोडनेवाला मलय-पवन आज पद्मिनी रमणियों के मुख के सुरभित पवन से अपनी होड कर रहा है।)

आचार्य दण्डी इस उक्ति पर टिप्पणी करते हैं कि इस प्रकार वैषम्य की उपेक्षा कर पौरस्त्य (गौड) कवियों की काव्योक्ति न अर्थ की अत्युक्ति और अनुप्रास की अपेक्षा रखते हुए काव्यमार्ग का विस्तार किया है—

इत्यनालोच्य वैषम्यमर्थालंकाराडम्बरौ।
अपेक्षमाणा ववृधे पौरस्त्या काव्यपद्धति ॥ (काव्यादर्श 1/50)

(4) अनुप्रास के प्रयोग के प्रति वैदर्भो तथा गौडों की रुचि भिन्न भिन्न है वैदर्भों के मत में अनुप्रास छन्द के चरण (पाद) में तथा पदों में भी होता है पर समान श्रुतिवाले वर्णों के प्रयोग में ऐसी दूरी नहीं होनी चाहिए कि उच्चरित वर्ण के श्रवण का संस्कार ही तब तक समाप्त हो जाए ऐसा होने पर अनुप्रास के प्रयोग का श्रुतिजन्य आनन्द नहीं रह जाएगा—

पूर्वानुभव संस्कारबोधिनी यद्यदूरता ॥ (काव्यादर्श, 1/55)

इसका उदाहरण है—

चन्द्रे शरन्निशोत्तंसे कुन्दस्तवकविभ्रमे।
इन्द्रनीलनिभं लक्ष्म सन्दधात्यलिन श्रियम् ॥ (काव्यादर्श, 1/56)

(शरद् की रात्रि के अलंकार कुन्दपुष्प के गुच्छे के समान दिखनेवाले चन्द्रमा में नीलकमल सा लाञ्छन भौंरे की शोभा धारण कर रहा है।)

यहाँ पर चन्द्र, कुन्द, इन्दु मन्द आदि में न, द र की तथा नील, निभ लिन में न ल की चरण-आवृत्ति से अनुप्रास का श्रुतिजन्य काव्यसौन्दर्य प्रकट हो रहा है।

वन्भ कवि अनुप्रास के प्रयोग में यह ध्यान रखते हैं कि श्लेष गुण (काव्य बन्ध) की उपेक्षा न हो और वर्णविन्यास में शथिल्य न प्रकट होने लगे।

पर गौड कवि इतने अनुप्रास प्रिय हैं कि वे अनुप्रास के प्रयोग में काव्य बन्ध के परुष होने तथा शथिल्य आ जाने की चिन्ता नहीं करते। उनके अनुप्रास प्रयोग में ये दोष पाये जाते हैं। साथ ही कुछ गौडमार्गानुयायी ऐसे अनुप्रास का भी प्रयोग करते हैं, जिसमें आवृत्त किये जा रहे वर्णों की दूरी इतनी हो जाती है कि समान श्रुति का बोध भी नहीं हो पाता, किन्तु वे इसे भी अनुप्रास की एक विधा मानते हैं जैसे—

रामामुखाम्भोजसदृशश्चन्द्रमा। (काव्यादर्श 1/58)

(चन्द्रमा रमणी के मुख-कमल के समान है।) इस उक्ति में रामा में प्रयुक्त 'मा' वर्ण की आवृत्ति चन्द्रमा के 'मा' में मानकर अनुप्रास का सौन्दर्य स्वीकार किया गया है।

(5) इसी प्रकार सुकुमारता गुण की काव्योक्ति में भी वैदर्भ एवं गौड मार्ग

में कवियों की अलग-अलग रुचियाँ हैं। वैदर्भ कवि अनिष्ठुरप्राय वर्णों के विन्यास में भी सुकुमारता गुण मानते हैं (अनिष्ठुरप्राय शब्द का अर्थ है कि बीच में निष्ठुर वर्ण भी रहने चाहिए नहीं तो सर्वकोमल वर्णों के विन्यास से बन्ध में शैथिल्य दोष आ जाएगा) उदाहरण है—

मण्डलीकृत्य बर्हाणि कण्ठैर्मधुरगीतिभिः।
कलापिनः प्रनृत्यन्ति काले जीमूतमालिनि॥ (काव्यादर्श 1/70)

(बादलों से भरे वर्षाकाल में कण्ठों से मधुर केकाध्वनि करते हुए मयूर पंखों को मण्डलाकार फैलाकर नाच रहे हैं।)

गौड कवि निष्ठुराक्षरों के विन्यास में ही सुकुमारता गुण की स्थिति मानते हैं, वे कष्टोच्चरित वर्णों के प्रयोग में दीप्ति (उज्ज्वलता) का दर्शन करते हैं, उदाहरण है -

न्यक्षेण क्षपितः पक्षः क्षत्रियाणां क्षणादिति। (काव्यादर्श, 1/72)

(न्यक्षेण नखविहीन धृतराष्ट्र द्वारा क्षत्रियाणां पक्षः=क्षत्रियों का बल, क्षणाद्=अल्प समय में ही क्षपित =नष्ट कर दिया गया।)

प्रत्येक गुण के सम्बन्ध में वैदर्भ और गौड दोनों मार्ग के कवियों के भिन्न-भिन्न काव्य प्रयोग उस समय के काव्य जिज्ञासुओं को विदग्धगोष्ठियों में सुनने को मिलते रहे होंगे। आचार्य दण्डी ने उनके काव्य प्रयोगों का संक्षिप्त अभिलेख अपने गुण सिद्धान्त के निरूपण में सुरक्षित कर रखा, जिसे पढ़कर उस युग के कवियों के काव्य-गोष्ठी-सम्बन्धी परिसंवाद का कुछ अनुमान हम कर सकते हैं। जैसा कि अन्य आचार्यों ने उल्लेख किया है उज्जयिनी तथा पाटलिपुत्र में काव्य परीक्षा तथा शास्त्र परीक्षा होती थी (द० राजशेखर, काव्यमीमांसा, अध्याय—10), वह काव्य-परीक्षा दण्डी के युग की विदग्ध गोष्ठियों का ही परिवर्तित रूप है।

इस प्रसंग में दण्डी के समाधिगुण के विशेष परिचय की आवश्यकता है जो वर्ण विन्यास नहीं, अर्थ विन्यास का विषय है। अचेतन में चेतनवस्तु के मनोव्यापार का दर्शन तथा उस भाव का अनुभूतिजन्य विन्यास किया जाना समाधि गुण है, इसके तीन उदाहरण दण्डी ने दिये हैं, एक उदाहरण है—

गुरुगर्भभरक्लान्ताः स्तनन्त्यो मेघपङ्क्तयः।
अचलाधित्यकोत्सङ्गमिमाः समधिशेरते॥ (काव्यादर्श 1/98)

अर्थात् जल के गुरुगर्भ भार से अलसाई ये मेघमालाएँ शब्द करती हुई पर्वत अधित्यका (रूपी सखी) की गोद में सो रही हैं।

इस वर्णन में मेघमाला में गर्भवती नायिका के धर्मों का आरोप है। जल से भरी मेघमाला गर्भवती नारी के समान अलसाकर चलने में थककर अधित्यका रूपी सखी की गोद में सो रही है। पर्वत के ढाल पर छायी मेघमाला को देखकर कवि

द्वारा गर्भवती नारी के रूप म उसका वर्णन किया जाना वस्तु-दर्शन को रोचक बना देता है।

वस्तुत प्रकृति के सौन्दर्य-दर्शन मे तल्लीन कवि द्वारा उस दर्शन को मानव मन व क्रिया-कलापो म परिणत कर देना ही समाधि गुण है। नवी शती म आचार्य आनन्दवर्धन न ध्वन्यालोक (2/5) म जो यह निरूपित किया कि कवि वाणी म कोई ऐसी अचेतन वस्तुवत्तान्त योजना नही हो सकती, जिसम अन्तत विभाव रूप म चेतनवस्तुवत्तान्त की योजना न आ जाय, अचेतन मे चेतन की वह वस्तुवत्तान्त-योजना दण्डी का यह समाधि गुण ही है। उनका दिया हुआ उदाहरण जिसम वियोगी नायक पुरूरवा न तेज धार म बहती हुई नदी को देखकर अपनी मानिनी नायिका उर्वशी का दर्शन किया है समाधिगुण काव्योक्ति को ही... है उदाहरण है—

> तरगभ्रभगा क्षुभितविहगश्रेणिरशना
> विकर्षन्ती फेन वसनमिव संरम्भशिथिलम
> यथाविद्ध याति स्खलितमभिसंधाय (बहुशो)
> नदी रूपणेय ध्रुवमसहना सा परिणता॥

अर्थात् तरगें टेढी भौंह हैं पक्षियो की कतार जो क्षुब्ध होकर कलरव कर रही है वह बजती हुई करधनी है चलने के वेग मे शिथिल होते लटकते हुए फेनरूपी झीने परिधान वस्त्र को हाथ से खीचती सँभालती वह मानो मेरी त्रुटिया को बार-बार स्मरण कर—ऊँची नीची चट्टानो पर चढ उतरकर उसी मान भाव म कुटिल गति स प्रवाहित होती चली जा रही है निश्चित ही वह मेरी मानिनी (उर्वशी) विरह सन्ताप को न सहकर मेरे वियोग मे उस ताप की शान्ति के लिए इस नदी के रूप म परिणत हो गयी है।

समाधि गुण को दण्डी न काव्य का सर्वस्व कहा है उनके युग म कवियो की अत्यधिक स्थान समाधि गुण काव्योक्तियो की रचना म थी (काव्यादर्श, 1/100)। दण्डी के इस विवेचन का अत्यधिक महत्त्व काव्य चिन्तन मे इसलिए भी है कि ध्वनि सिद्धान्त के विवेचक आनन्दवर्धन सर्वत्र काव्य रचना म रस भाव की स्थिति के लिए जो अचेतन वस्तु वत्त म चेतनगत वस्तु वत्तान्त अन्तत विभाव रूप म स्वीकार करते हैं वह *समाधि गुण का ही लक्षण है जिसके प्रथम उद्भावक* आचार्य दण्डी हैं।

काव्य की भाषाएँ

यत दण्डी न विदग्ध गोष्ठियो म कवियो को उक्तियाँ सुनकर अपने काव्य-लक्षण की रचना की है इसलिए उनकी दृष्टि काव्य के मार्ग गुणो के अतिरिक्त, काव्य की भाषाओ पर भी गयी है। गोष्ठिया म संस्कृत के अतिरिक्त दूसरी भाषा-

के कवियों की उपस्थिति अपने आप हो जाती रही होगी। दसवीं शती में तो राज-सभा की कविगोष्ठी में प्रत्येक भाषा के कवियों के बैठने के स्थान तक निश्चित होते थे (राजशेखर, काव्यमीमांसा, अध्याय-10)।

दण्डी द्वारा अपने समय की उन भाषाओं की चर्चा करना जिनमें काव्य-रचना होती थी महत्त्वपूर्ण उल्लेख है। दण्डी ने लिखा कि यह काव्य-वाङ्मय पुनः भाषा की दृष्टि से चार प्रकार का है—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा मिश्रित भाषाएं। प्राकृत के भी उन्होंने तीन प्रकार बताए—संस्कृत का साक्षात्‌ रूप तद्भव, संस्कृत से मिलता रूप तत्सम तथा देशी प्राकृत। देशी प्राकृत के ही भेद थे—शौरसेनी, लाटी, गौडी। यद्यपि शास्त्रों में संस्कृत के अतिरिक्त सभी भाषाओं को अपभ्रंश कहा गया है तो भी काव्य में आभीर आदि जातियों की भाषा ही अपभ्रंश कही जाती है। दण्डी के समय अपभ्रंश भाषा में काव्य रचना की जा रही थी। दण्डी ने भूत भाषा (पैशाची भाषा) में लिखे कथाग्रंथ 'बृहत्कथा' की प्रशंसा की है जो अद्भुत अर्थ से भरी है।

इसी प्रकार महाराष्ट्री प्राकृत की प्रशंसा में उसमें लिखे सेतुबंध काव्य की सराहना की है जो सूक्तिरत्नों का समुद्र है। अपभ्रंश भाषा में काव्य रचना किये जाने का उल्लेख दण्डी के समय की चौथी शती ईस्वी में ही ले आता है। कुछ पुराविद इतिहासज्ञ अपभ्रंश की सत्ता उस युग से ही स्वीकार करते हैं। दण्डी के बाद देश में काव्य रचना की भाषाओं में वृद्धि होती रही है। बाद के आलंकारिकों में रुद्रट ने छह काव्य भाषाओं का, भोज ने नौ काव्य भाषाओं का तथा विश्वनाथ ने सोलह काव्य भाषाओं का उल्लेख किया है।

काव्य के भेद

स्वरूप की दृष्टि से काव्य के तीन भेद हैं—गद्य, पद्य और इन दोनों का मिश्रित रूप—नाटक, चम्पूकाव्य। पद्य चार चरणों के होते हैं। वे भी दो तरह के हैं—वृत्त (वर्णों की संख्या से जिनका लक्षण होता है) तथा जाति (मात्रागत)। काव्यरूपी समुद्र के पार जानेवालों के लिए पद्य (छन्द) नौका के समान है।

विषय का वर्णन करने के लिए पद्य एक अथवा एक साथ अधिक संख्या में भी प्रयुक्त किये जाते थे। एक पद्य में कही हुई कविता को मुक्तक कहते थे। इसी प्रकार कुलक (पांच छन्दों का समूह) कोष, संघात दूसरे भेद होते थे। ये सभी सर्गबन्ध महाकाव्य के अंश हैं। लास्य, छलित, शम्पा आदि प्रेक्षार्थ(दृश्य) काव्य हैं, जिनका अनुभव देखकर होता है। शेष विधाएं श्रव्यकाव्य हैं।

गद्य-काव्य के कथा और आख्यायिका दो भेद हैं। इन भेदों में ही शेष आख्यान प्रकार आ जाते हैं। आख्यायिका का नायक स्वयं कहता है। कथा का वक्ता नायक दूसरा भी होता है। वस्तुतः इनकी संज्ञाएँ दो हैं, प्रकार एक ही है।

महाकाव्य—काव्य का सर्गबन्ध रूप

सगबन्ध रचना महाकाव्य है। इतिहास, पुराण अथवा इतर स्रोतो से ली गयी कहानी का काव्यरूप, जो सग-बन्ध प्रबन्ध म विस्तार से कहा गया हो महाकाव्य है पर यह कहानी सदाश्रित अर्थात सच्चरित महान नायक के आश्रित हो उसे केन्द्र मे रखकर कही गयी हो। उस विशद करनेवाले अग ये है—नगर, समुद्र, पवत ऋतु चन्द्रोदय और सूर्योदय के वणन। उपवन क्रीडा जल क्रीडा पान गोष्ठी, विवाह सभोग शृगार के विलास विप्रलम्भ शृगार, पुत्र ज म जैसी अगभूत कथाओ की योजना। शत्रु विजय के लिए मन्त्रणा दूत भेजना रण-प्रयाण, युद्ध और युद्ध म विजय के साथ कथावस्तु मे नायक के अभ्युदय का गुण गान।

आरम्भ म मगलाचरण विषयक काव्योक्ति। सग के अन्त म छन्द परिवतन सग बडे न हो। कथावस्तु मे सन्धियो की योजना (ये सन्धियाँ नाटक की कथावस्तु से ली गयी हैं।) तथा वणना म धम अथ काम मोक्ष का सन्निवेश हो।

महाकाव्य का अन्तिम और विशिष्ट लक्षण है कि उसे अलकृत उक्तियो से युक्त होना चाहिए। शायद ऐसा होने पर ही महाकाव्य लोकरजक होकर कल्पान्तर-स्थायी हो जाता है अर्थात मानव जाति के बीच सदा के लिए अमरत्ता प्राप्त कर लेता है। यदि सभी लक्षणो का समावेश न भी हो तो जितना कहा जाय, वह सहृदयो को प्रसन्न करनेवाला हो। ऐसा होने पर महाकाव्य समग्र ही माना जाएगा उसके न्यून होने की बात नही उठ सकती। (काव्यादश 1/14-20)

दण्डी के सामने महाकाव्य अवश्य रहे होंगे। किन्तु ऐसा लगता है कि उनको अपने लक्षणो से युक्त चमत्कृत करनेवाला महाकाव्य दृष्टिगत नही हुआ। अन्यथा जिस काव्य स्वरूप का उन्होने इतने विस्तार स लक्षण किया, उसके अभीष्ट उदाहरण के रूप म वैसे महाकाव्य का नाम निर्देश अवश्य करते।

काव्य का लक्षण

आचाय दण्डी ने काव्यादश का प्रथम परिच्छेद समग्र रूप स काव्यलक्षण को ही दृष्टि मे रखकर लिखा है। पर उन्होने किसी एक वाक्य या कारिका म काव्य का कोई इदमित्थ लक्षण परिभाषित नही किया है। इसका कारण काव्य चिन्तन के प्रति दण्डी की सहज दृष्टि है। इसीलिए उन्होने काव्य लक्षण के लिए कोई वाक्य न लिखकर उसके शरीर तथा प्राणो का व्याख्यान किया है—

शरीर तावदिष्टाथ व्यवच्छिन्ना पदावली। (काव्यादश, 1/10)

अभीष्ट अथ से युक्त पदावली (शब्द विन्यास) काव्य का शरीर है।

शब्द विन्यास भाषा पर आधारित है। उस भाषा (वाणी) के अनेक भाग हैं उनमे सूक्ष्मभेद परस्पर दिखायी ही पड जाता है, यहाँ तक कि प्रत्येक कवि का

अपना अपना काव्यमाग होता है। उनम स्पुट रूप म प्रकट दो माग है—वदभ और गौड। वदभ माग के प्राण दश गुण है जो विपयय रूप म गौड माग म भी पाय जात हैं।

इस प्रकार दण्डी न काव्य लक्षण न करके काव्य सृष्टि का परिचय दिया है—शब्द वियास शरीर है, माग उसके विस्तार हैं और गुण प्राण है।

दण्डी न काव्य का इदमित्थ लक्षण न करके काव्य रचना की सहज प्रवृति को पहचाना है, यह प्रमाणित होता है। विधाता की सष्टि के समान या उसके समानान्तर ही यह काव्य रचना है। विधाता भी कविमनीषी परिभू स्वयम्भू है, उसकी निर्मित सृष्टि नवो नवो भवति जायमान दिखायी पडती है। प्रत्यक काव्य रचना का सौन्दय भी नवीन होता है, चाह विषय वस्तु एक ही हो। एक ही रामकथा भिन्न भिन्न कवियो क द्वारा रचित होकर सवथा नतन होती रही है। नवीनता ही सौन्दय है। इस नवीनता को किसी काव्य लक्षण म परिभाषित नही किया जा सकता। इस क्षेत्र म दण्डी सहज और स्वच्छ है। उन्होने यह भी कहा है कि काव्य रचन की प्रतिभा निसग-जात होती है सुना और अनुभव किया हुआ विस्तत निमल ज्ञान उसक लिए सहायक होता है।

अलकार-निदशन

अलकारो का व्याख्यान काव्यादश क द्वितीय परिच्छेद म है। इन अलकारो को दण्डी न साधारण अलकार वग कहा है। माग विवचन म आये माग के प्राणभूत गुणो को उन्होंने सच्चे अथ म अलक्रिया अथवा विशिष्ट अलकार माना है। इसका अथ है कि माग के प्राण गुणो का विवेचन उनके समय की नयी उदभावना है जिस व विशिष्ट अलकार मानते ह। उपमा आदि अलकार जिनका व्याख्यान द्वितीय परिच्छेद मे किया जा रहा है परम्परा स प्राप्त है और पूव के आचार्यो द्वारा निरूपित है इसलिए दण्डी इनको साधारण अलकार कहत हैं—

साधारणमलकारजातमन्यत्प्रदश्यत ॥ (काव्यादश 2/3)

अत दण्डी काव्य-रचना म गुणवादी है और शब्दसौन्दय की प्रधानता कवि की कृति म मानते है। उक्तिगत वैचित्र्य या उपमा आदि अलकार उनका गौण पक्ष है।

दण्डी के अनुसार काव्य के शोभाकर धम अलकार है—

काव्यशोभाकरान धर्मान अलकारान् प्रचक्षत। (काव्यादश 2/1)

शोभाकर का अथ हुआ—उक्ति म चमत्कार तथा सरसता लानवाले धम। उन्होंने परिच्छेद क आरम्भ म ही अलकारो की सूची द दी है, जिनका व्याख्यान आग किया है इनकी सख्या 35 है—

(1) स्वभावाख्यान (स्वभावोक्ति), (2) उपमा, (3) रूपक, (4) दीपक,

(5) आवृत्ति, (6) आक्षेप, (7) अर्थान्तरन्यास, (8) व्यतिरेक, (9) विभावना, (10) समास (समासोक्ति), (11) अतिशयोक्ति, (12) उत्प्रेक्षा (13) हेतु (14) सूक्ष्म (15) लव, (16) क्रम, (17) प्रेय (18) रसवत, (19) ऊर्जस्वि, (20) पर्यायोक्त, (21) समाहित (22) उदात्त, (23) अपह्नुति (24) श्लेष, (25) विशेष (विशेषोक्ति), (26) तुल्ययोगिता, (27) विरोध, (28) अप्रस्तुत-स्तोत्र (अप्रस्तुतप्रशसा) (29) व्याजस्तुति (30) निदशना, (31) सहोक्ति, (32) परिवृत्य, (33) आशी (34) सकीण (समृष्टि), (35) भाविक।

इनके अतिरिक्त छह अन्य अलकारो का व्याख्यान भी उन्होने उपमा रूपक तथा उत्प्रेक्षा म अन्तर्भाव मानकर किया है जो स्वतन्त्र अलकार के रूप म आते हैं—

(36) अनन्वय, (37) सन्देह (38) उपमारूपक (39) उत्प्रेक्षावयव, (40) अन्योऽन्योपमा (41) प्रतिवस्तूपमा।

स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति

दण्डी कहते हैं कि श्लेष सभी अलकारो के चमत्कार को बढ़ाता है और वक्रोक्तिमूलक अलकारो का निश्चय ही शोभा वधक है। तथा समस्त काव्य-वाङमय (आलकारिक उक्तियाँ) स्वाभावोक्ति और वक्रोक्ति दो वर्गों म विभाजित हैं—

श्लेष सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम।
भिन्न द्विधा स्वभावोक्तिवक्रोक्तिश्चेति वाङमयम॥

(काव्यादश 2/363)

दण्डी का स्वभावोक्ति एव वक्रोक्ति का यह विभाजन काव्य रचना के सूक्ष्म चिन्तन का गवाह है। काव्यादश के प्रथम परिच्छेद मे भाषा भेद माग भेद विधा-भेद से काव्य का विभाजन किया गया है, यहाँ आचाय ने अथ शोभा की विधायक अलकृत उक्तियो को दृष्टि म रखकर उनकी प्रवृत्ति और प्रयोग की भूमि मे काव्य का स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति दो प्रकार का बताया है। वैसे भी उन्होंने स्वभावो-क्ति को आद्य अलङ्कृति कहा है। स्वभावोक्ति का अथ ही है सहज काव्योक्ति और जहाँ भाव को व्यक्त करने के लिए वचन वैचित्र्य, वक्र या भग भणिति का सहारा लिया गया वे उक्तियाँ वक्रोक्ति है। एक मे कवि की सहज वाणी का चमत्कार होता है और दूसरे मे कवि की कल्पना काव्य-ससार की रचना करती है अर्थात् कवि कल्पना प्रौढ वस्तुवक्रता मे वक्रोक्ति काव्य के दशन होते हैं। यह सामान्य परिचय है वसे सहज और वक्र का विस्तार बहुत है। कुन्तक ने सुकुमार माग तथा विचित्र माग का निरूपण किया है। यह निरूपण भी बहुत कुछ दण्डी के उक्त-विभाजन का पर्याय है।

दण्डी ने ऐसा कुछ विभाजन नही किया है कि किन अलकारो को स्वभावोक्ति वग म रखा जाये और किनको वक्रोक्ति वग म रखा जाय, पर उनकी दृष्टि को ध्यान म रखकर ऐसा विभाजन किया जा सकता है। स्वभावोक्ति वग म अधिक अलकार नही रखे जा सकत, स्वभावोक्तिपरक उक्तियाँ कवियो का प्रथम प्रयोग थी तथा विदग्ध गोष्ठियो मे कवि एसी उक्तियाँ सुनाकर चमत्कार नही पैदा कर सकते थे, इसलिए भी स्वभावोक्ति का बहुत विस्तार काव्यादश म नही है जहाँ दण्डी ने उपमा क बत्तीस उदाहरण दिये हैं, स्वभावोक्ति अलकार के जाति, क्रिया गुण, द्रव्य भेद म केवल चार उदाहरण दकर उस प्रकरण को समाप्त किया है। हम यह ध्यान म रखना चाहिए कि उन्होने स्वभावोक्ति न कहकर इस स्वभावाख्यान अलकार कहा है तथा कहा है कि शास्त्रो म तो इसके निरूपण का ही साम्राज्य है, काव्य की उक्तियो म भी यह अभीष्ट है—

जातिक्रियागुणद्रव्य-स्वभावाख्यानमीदशम्।

शास्त्रेष्वस्यव साम्राज्य काव्यष्वप्यतदीप्सितम ।। (काव्यादश 2/13)

सामान्य रूप से स्वभावोक्ति वग म इन अलकारो को रखा जा सकता है—स्वभावाख्यान (जाति), दीपक तुल्ययोगिता व्यतिरेक, आवत्ति हतु सूक्ष्म, लश *प्रेयस रसवत, ऊजस्वि समाहित उदात्त निदशना आशी भाविक।*

वक्रोक्तिवग मे इन अलकारो का रख सकत हैं—

उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, समासोक्ति अतिशयोक्ति, क्रम, पर्यायोक्त, अपह्नुति, श्लेष विशेषोक्ति अप्रस्तुतप्रशसा व्याजस्तुति।

दण्डी ने अलकारो का व्याख्यान करने मे सद्धान्तिक निरूपण की पद्धति नही अपनायी है विदग्धगोष्ठियो म कैसी उक्तियाँ पढी जाती *थी अलकार सम्ब धी* उनके विशिष्ट प्रयोग काव्यादश मे दर्शाये गये हैं। इन प्रयोगो को ही अलकारो का भेद निरूपण कर दिया है। सर्वाधिक विस्तार उपमा अलकार को दिया है। 52 कारिकाओ म इस अलकार का व्याख्यान है। इसके बत्तीस भद गिनाय ह तथा उपमावाची पदा की जो सूची दी है उनकी सख्या साठ से ऊपर है।

उनका उपमा का लक्षण है—

यथाकथञ्चित सादृश्य यत्रोद्भूत प्रतीयते।

उपमा नाम स तस्या प्रपञ्चोऽय प्रदश्यत ।।

(काव्यादश, 2 14)

अर्थात जिस किसी प्रकार स प्रकट सादश्य जहाँ दिखायी पडता है वह उपमा अलकार है। उसका विस्तार दिखाया जा रहा है।

उपमा के सम्बन्ध म ही रूपक का लक्षण किया गया है—

उपमव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यत।

यथा बाहुलता पाणिपदम चरणपल्लव ।। (काव्यादश, 2,66)

अति सादृश्य प्रदर्शन के लिए उपमा में भेद का तिरोधान ही रूपक है। जैसे—बाहुलता, पाणिपद्म (करकमल), चरणपल्लव।

उपमा और रूपक अलंकार की उक्तियों का विस्तार बहुत अधिक है। 'काव्यादर्श' में इन अलंकारों के विभिन्न प्रयोगों की उक्तियाँ दी गयी हैं यद्यपि उनको इन अलंकारों का भेद प्रकार नहीं कहा जा सकता, पर उसमें प्रत्येक की अपनी नवीनता है। दण्डी यह स्वीकार करते हैं कि मैंने जो कुछ प्रयोग-उदाहरण दिये हैं वह दिङ्मात्र है क्योंकि उपमा और रूपक अलंकारों के विकल्पों का अन्त नहीं है—'न पर्यन्तो विकल्पानां रूपकोपमयोरतः।' (काव्यादर्श 2/96)

कभी उपमा के विवेचन को ही समस्त काव्य-लक्षण माना जाता था। यह बात राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' में दिये गये उस उल्लेख से प्रमाणित होती है जिसमें काव्य विद्या अठारह अधिकरणों में विभक्त है तथा नवाँ अधिकरण औपम्य है, जिसे औपकायन ने लिखा। यहाँ 'औपम्य' का यलक्षण में उपमा रूपक, व्यतिरेक तथा अन्य उपमामूलक उक्तियों के विकल्प सम्मिलित हैं। उपमा तथा रूपक की अलग-अलग प्रतिष्ठा तो बाद में हुई होगी। जब उपमा अलंकार ही समस्त काव्यशास्त्र रहा होगा, उस मान्यता में काव्यादर्श में दिये गये उपमा तथा रूपक के विभिन्न प्रयोग भेदों को देखना चाहिए। उस मान्यता के ही अवशेष पशल ढंग से काव्यादर्श में उपस्थित हैं।

उपमा

कवि-समाजों या विदग्धगोष्ठियों में पढ़ी जानेवाली उपमा की ऐसी उक्तियों के प्रतिनिधि प्रयोग विकल्प दण्डी उपस्थित करते हैं। नियमोपमा, अनियमोपमा, मोहोपमा, संशयोपमा, निर्णयोपमा, समानोपमा, निन्दोपमा, प्रशंसोपमा, प्रतिषेधोपमा, चटूपमा, अद्भुतोपमा, बहूपमा, विक्रियोपमा, हेतूपमा, तुल्ययोगोपमा—आदि उपमा के ऐसे ही उक्ति प्रकार हैं।

इनके उदाहरणों से इनके उक्ति प्रकार होने की ही स्फुटता प्रतीत होती है, उपमा के भेद की नहीं। नियमोपमा का उदाहरण है—

त्वन्मुखं कमलेनैव तुल्यं नान्येन केनचित्।
इत्यन्यसाम्यव्यावृत्तेरियं सा नियमोपमा॥

(काव्यादर्श, 2/19)

तुम्हारा मुख कमल के ही समान है, किसी अन्य के नहीं। यहाँ दूसरों से समानता किये जाने के निषेध से नियमोपमा है।

अनियमोपमा का उदाहरण है—

पद्मं तावत्तवान्वेति मुखमन्यच्च तादृशम्।
अस्ति चेदस्तु तत्कारीत्यसावनियमोपमा॥ (काव्यादर्श, 2/20)

कमल तुम्हारे मुख का अनुकरण करता है यदि कमल से अतिरिक्त (चन्द्र आदि) भी उस मुख का अनुकरण करते हैं, तो करें। यह अनियमोपमा है।

अद्भुतोपमा की उक्ति है—

यदि किञ्चिद् भवेत पद्म सुभ्रु विभ्रान्तलोचनम्।
तत्ते मुखश्रिय धत्तामित्यसावद्भुतोपमा ॥
(काव्यादर्श, 2/24)

हे सुन्दर भौंहोंवाली, यदि कमल कुछ कुछ चंचल आँख खोलकर देखने लगे तब वह तुम्हारे मुख की शोभा धारण करेगा। यह अद्भुतोपमा है।

समानोपमा इस प्रकार वर्णित है—

सरूपशब्दवाच्यत्वात् सा समानोपमा यथा।
बालेवोद्यानमालेयं सालकाननशोभिनी ॥
(काव्यादर्श 2, 29)

समानाकृति शब्द द्वारा जहाँ साधारण धर्म कहा जाय वह समानोपमा है। जैसे—बाला के समान यह उद्यानमाला सालकानन (अलक केशकलाप से युक्त मुख, साल वृक्ष के कानन—वन) की शोभा से शोभित हो रही है।

निन्दोपमा का उदाहरण है—

पद्मं बहुरजश्चन्द्रः क्षयी ताभ्यां तवाननम्।
समानमपि सोत्सेकमिति निन्दोपमा स्मृता ॥
(काव्यादर्श, 2, 30)

कमल पराग की धूल से भरा है चन्द्रमा कृष्णपक्ष में क्षीण हो जाता है (प्रिय) तुम्हारा मुख उन दोनों के समान होकर भी अपनी समग्र रमणीयता पर गर्व करता है। इस प्रकार की उक्ति निन्दोपमा कही जाती है।

इसी की उलटी उक्ति प्रशंसोपमा है—

ब्रह्मणोऽप्युद्भवः पद्मश्चन्द्रः शम्भुशिरोधृतः।
तौ तुल्यौ त्वन्मुखेनेति सा प्रशंसोपमोच्यते ॥
(काव्यादर्श, 2/31)

अर्थात् कमल ब्रह्मा की जन्मभूमि है चन्द्रमा को शंकर अपने शिर पर धारण करते हैं (प्रिये) ये दोनों महिमाशाली तुम्हारे मुख से ही समानता रखते हैं। इसे प्रशंसोपमा कहा जाता है।

वस्तुतः ये सभी उपमा प्रकार विदग्ध गोष्ठियों में सुनायी जानेवाली उक्तियों के विविध विकल्प हैं। उन्हीं की सरणि पर इन उदाहरणों का निदर्शन काव्यादर्श में किया गया है ये उदाहरण उपमा के सैद्धान्तिक भेद प्रभेद न होकर प्रयोगों की कल्पनाएँ हैं।

इसी प्रकार कुछ और भी रोचक उदाहरण हैं, जैसे यह चटूपमा का—

मगेक्षणाङ्कम त वक्त्र मृगणैवाङ्कित शशी।
तथापि सम एवासौ नोत्कर्षीति चटूपमा ॥
(काव्यादर्श, 2/36)

(प्रिय !) तुम्हारा मुख मग नयन (हरिण क समान नत्र मात्र) से शोभित है च द्रमा मृग (सम्पूण हरिण क लाछन) स ही भूपित है, तो भी वह च द्रमा तुम्हारे मुख क समान ही है, उसस बढकर नही है। यह चटूपमा की उक्ति है।

तत्त्वाख्यानोपमा का उदाहरण है—

न पद्म मुखमवद न भृङ्गौ चक्षुषी इमे।
इतिविस्पष्टसाम्यात् तत्त्वाख्यानापमैव सा ॥
(काव्यादर्श 2/37)

कमल नही यह (बाला का) मुख ही है दो भ्रमर नही, य आँखें हैं। इस प्रकार विधिनिषेध द्वारा जो स्पष्ट समानता स्थापित की गयी है यह तत्त्वाख्यानोपमा है।

हतूपमा का उदाहरण है—

कान्त्या चन्द्रमस धाम्ना सूयम धैर्येण चाणवम्।
राजननुकरोषीति सैषा हेतूपमा स्मृता ॥
(काव्यादर्श, 2/50)

ह राजन ! तुम कान्ति स चन्द्रमा की, तेज से सूय की और धय से समुद्र की समानता करत हो। यह हतूपमा है।

बहूपमा तथा विक्रियोपमा उक्ति विकल्पो क भी विकल्प हैं। जैस बहूपमा का उदाहरण है—

चन्दनोदकचन्द्रांशु चन्द्रकान्तादिशीतल।
स्पशस्तवत्यतिशय बाधयन्ती बहूपमा ॥ (काव्यादर्श, 2/40)

चन्दन जल, चन्द्र किरण तथा चन्द्रकान्तमणि आदि के समान (प्रिये !) तुम्हार स्पश की शीतलता सुखदायी है। इस तरह अतिशय बाध की उक्ति बहूपमा है।

विक्रियोपमा है—

चन्द्रबिम्बादिवोत्कीण पद्मगभादिवोद्धतम।
तव तन्वङ्गि वदनमित्यसौ विक्रियोपमा ॥
(काव्यादर्श, 2/41)

हे तन्वङ्गि ! तुम्हारा मुख इतना सौ दय-पूण है, जैसे लगता है चन्द्रमा के बिम्ब स उत्कीण (तराश) कर निकाला गया है या कि जसे कमल के गभ से प्रकट हुआ है। यह विक्रियापमा है।

इनके साथ असाधारणोपमा (अन वय,) प्रतिवस्तूपमा, मालोपमा जसी उक्तियों के उदाहरण भी है जो बाद म उपमा के भेद या अ य अलकार के रूप म मा य हुए हैं।

रूपक

उपमा चत्र के बाद रूपक चत्र का विवेचन हुआ है। रूपक के भेदो म भी उक्ति प्रकारो के रोचक विकल्पो के उदाहरण दिये गय हैं। ये प्रकार या विकल्प हैं—अवयव रूपक अवयविरूपक युक्तरूपक, अयुक्तरूपक, विषमरूपक, विरुद्ध-रूपक सविशेषणरूपक हेतुरूपक, उपमारूपक, व्यतिरेकरूपक, रूपकरूपक, समाधानरूपक आदि। निदशन न रूप मे कुछ क उदाहरण दिय जात हैं—

उपमान के अवयवा क साथ उपमेय के अवयवा म आरोपण अवयव रूपक हैं, अवयवो का आरोपण न कर केवल उपमान मात्र का आरोपण अवयविरूपक है।

अवयवरूपक का उदाहरण है—

अकस्मादव त चण्डि स्फुरिताधर पल्लवम।
मुख मुक्तारुचो धत्ते धमाम्भ कणमजरी ॥
(काव्यादश 2/71)

ह क्रोध मे भरी प्रिये। अकस्मात ही तुम्हारे मुख के अधर पल्लव फडक उठे और उसमे पसीने की जलकण मजरी मोतिया की का ति लकर चमक उठी।

अवयविरूपक का उदाहरण है—

वल्गितभ्रू गलदघम जलमालोहितक्षणम्।
विवणोति मदावस्थामिद वदनपकजम् ॥ (का यादश, 2/73)

प्रिय। तुम्हारा यह मुख कमल जिसकी भौंह चचल हो रही है पसीने की बूदे टपक रही हैं, आँखें लाल है मदावस्था का प्रकट कर रहा है। यहाँ उपमान अवयवि कमल का ही मुख म आरोप है भ्रमर आदि का निर्देश नही है। इसलिए अवयविरूपक है।

युक्तरूपक का उदाहरण है—

स्मितपुष्पाज्ज्वल लोलनत्रभङ्गमिद मुखम।
इति पुष्पद्विरफाणा सङ्ग त्या युक्तरूपकम ॥
(काव्यादश 2/77)

(प्रिय।) तुम्हारा यह मुख है जिसकी मुस्कराहट फूल की शोभा है चचल नत्र भौरे हैं। यहाँ फूल और भौरो की उचित सगति स युक्तरूपक है।

अयुक्तरूपक विसगति म होना है—

इदमाद्रस्मित-ज्योत्स्न स्निग्धनत्रोत्पल मुखम।
इति ज्योत्स्नोत्पलायोगादयुक्त नाम रूपकम् ॥ (2/78)

यह तुम्हारा मुख है जो मीठी मुस्कान की ज्योत्स्ना से भरा है जिसमे प्रेम रस से भरे नव कमल खिले हैं। यहाँ ज्योत्स्ना तथा कमल का पृथक् प्रयोग होने से अयुक्तरूपक है।

सविशेषणरूपक का उदाहरण है—

हरिपाद शिरोलग्नजह्नुकन्याजलांशुकः ।
जयत्यसुरनि शङ्क सुरानन्दोत्सवध्वज ॥ (काव्यादर्श, 2/81)

भगवान वामन का चरण आकाश को मापता हुआ विजयी हो जो असुरो की विजय से निर्भय देवो के आनन्द उत्सव का ध्वज है, जिसके शिरोभाग मे गंगा की जलधारा का अंशुक (पताका का वस्त्र) फहरा रहा है। यहाँ वामन के चरण मे समग्रविशेषण के साथ पताका का वर्णन किया गया है अत सविशेषण रूपक है।

रूपकरूपक का रोचक उदाहरण यह है—

मुखपङ्कजरङ्गेऽस्मिन भ्रूलता नर्तकी तव ।
लीलानृत्य करोतीति रम्य रूपकरूपकम ॥
(काव्यादर्श, 2/93)

(प्रिय !) तुम्हारे मुख कमल रूपी इस रंगभूमि मे भौंह लता रूपी नर्तकी विलास के साथ नृत्य कर रही है। यह सुन्दर रूपकरूपक का उदाहरण है मुख कमल तथा भ्रूलता स्वय मे रूपक के उदाहरण है उनमे भी क्रमश रंगभूमि और नर्तकी का आरोप किया गया है यह रूपक मे रूपक की कल्पना है। ऐसे रोचक उदाहरण बाणभट्ट की कादम्बरी मे पाये जाते हैं।

व्यतिरेक

उपमा तथा रूपक के साथ व्यतिरेक के सम्बन्ध मे चर्चा कर देना आवश्यक है। ये तीनो अलंकार सादृश्यमूलक उक्तियो की मूल कल्पना भूमि रहे है। आगे इनसे ही अलंकारो मे कल्पना का वैचित्र्य विस्तार पाता है। दण्डी ने व्यतिरेक के दस प्रयोग भेद किये है। व्यतिरेक का लक्षण है—

शब्दोपात्ते प्रतीते वा सादृश्ये वस्तुनोर्द्वयो ।
तत्र यद्भेदकथन व्यतिरेक स कथ्यते॥ (काव्यादर्श, 2/180)

जहाँ उपमेय और उपमान दोनो वस्तुओ के सादृश्य मे शब्द द्वारा अथवा प्रतीति (पूर्वापर प्रसंग) से जो भेद कथन किया जाता है, उसे व्यतिरेक कहते है।

दण्डी ने व्यतिरेक के चार उदाहरण केवल अपने आश्रय राजा तथा समुद्र के सादृश्य मे भेद की स्थिति का वर्णन करते हुए दिये हैं। इनमे दो उदाहरण दिये जाते हैं, पहला श्लेष व्यतिरेक का है—

त्व समुद्रश्च दुर्वारौ महासत्त्वौ सतजसौ।
अय तु युवयोर्भेद स जडात्मा पटुर्भवान् ॥
(काव्यादश, 2/180)

राजन ! तुम और समुद्र दोनो दुर्वार (अपराजेय दुर्वार—खारा जल) महा-
सत्त्व (अतिशय सामर्थ्य से युक्त तिमिंगल आदि प्राणियों से भरा) और
तेजोयुक्त (तजस्वी वडवानल स युक्त) हो दोनों मे भेद यह है कि समुद्र
जडात्मा है आप पटु—विवेकशील हैं।

आक्षेप व्यतिरेक का उदाहरण है—

स्थितिमानपि धीरोऽपि रत्नानामाकरोऽपि सन्।
तव कक्षा न यात्येव मलिनो मकरालय ॥
(काव्यादश, 2/187)

राजन् मकरालय समुद्र स्थितिमान है, धीर भी है, रत्नो की खान भी है
लेकिन इन गुणा म समान होकर भी वह नील जल से श्याम होने के कारण
आपकी तुलना म नही ही आता है।

व्यतिरक का सुन्दर उदाहरण नीतिपरक यह उक्ति है—

अरत्नालोकसहायमहाय सूयरश्मिभि ।
दृष्टिरोधकर यूना यौवनप्रभव तम ॥
(कायादश, 2/197)

यौवन स उत्पन्न अधकार युवको की आँख पर पर्दा डालनेवाला है,
(सामान्य अधकार से विशिष्ट) जिस अधकार को रत्नो की प्रभा नष्ट नही
कर सकती और न सूय की किरणें हरण कर सकती हैं।

आक्षेप

उपमा, रूपक के अनन्तर सर्वाधिक विस्तार आक्षेप अलकार का है इसके
चौबीस भेदो का लक्षण उदाहरण दिया गया है। आक्षेप का लक्षण है—

प्रतिषेधोक्तिराक्षेपस्त्रैकाल्यापेक्षया त्रिधा।
अथास्य पुनराक्षेप्यभेदानन्त्यादनन्तता ॥
(काव्यादश 2/120),

अर्थात प्रतिषेध की उक्ति आक्षेप है। भूत (वृत्त) वतमान एव भविष्यत्
काल भेद मे इसके तीन प्रकार हैं। पुन आक्षेप्य विधि के अनन्त भेद होने से उसके
उक्ति-प्रकार भी अनन्त हैं। इसके अन्य भेदो म कारण, काय, अनुज्ञा, प्रभुत्व,
अनादर, आशी, परुष, मूर्च्छा सानुक्रोश, अनुशय, सशय, अर्थान्तर, हेतु आदि हैं,
जिनम अनुज्ञा, प्रभुत्व, अनादर परुष माचिन्य आदि सचारी भावों के ही
प्रकारान्तर हैं।

प्रभुत्वाक्षेप का उदाहरण है—

धनञ्च बहुलभ्य त सुख क्षेम च वत्मनि।
न च मे प्राणसन्देहस्तथापि प्रिय मा स्म गा ॥

(काव्यादर्श, 2/137)

प्रिय ! तुम्हारी यात्रा ठीक मालूम पड रही है, धन बहुत मिलेगा मार्ग मे सुख और कल्याण प्राप्त करोगे विरह म मेरे प्राण का स देह नहीं है तो भी जाओ नही। इस उक्ति म नायिका न अपने स्नेहजनित प्रभुत्व स प्रिय की यात्रा का प्रतिषेध किया है, यह प्रभुत्वाक्षेप है।

अनुशयाक्षेप का उदाहरण है—

अर्थो न सम्भृत कश्चिन्न विद्या काचिदर्जिता।
न तप सञ्चित किञ्चिद गत च सकल वय ॥

(काव्यादर्श, 2/161)

कोई धन नहीं इकट्ठा किया, कोई विद्या नही प्राप्त की और कुछ भी तप नही सचित किया—सारी अवस्था ऐस ही बीत गयी। यह उक्ति अनुशयाक्षेप है जिसम अवस्था से वद्ध हुआ व्यक्ति निष्फल जीवन के लिए पश्चात्ताप कर रहा है। यह भाव का उदगार मात्र है।

एस ही अर्थान्तराक्षेप है—

चित्रमाक्रान्तविश्वाऽपि विक्रमस्त न तृप्यति।
कदा वा दृश्यते तृप्तिरुदीर्णस्य हविर्भुज ॥

(काव्यादर्श, 2/165)

राजन ! आश्चय है, विश्व को आक्रान्त करक भी तुम्हारा पराक्रम तृप्त नही हो रहा है अथवा उद्दीप्त अग्नि की तृप्ति कब देखी जाती है ?—यहाँ अर्थान्तर द्वारा आश्चय क प्रति आक्षेप किया गया है, अत अर्थान्तराक्षेप है।

निदर्शना

और यदि यही अर्थान्तर मद असत् रूप से निर्दिष्ट हो तो निदर्शना अलकार हो जाता है। निदर्शना का यही लक्षण दण्डी देते हैं—

अर्थान्तरप्रवृत्तेन किञ्चित तत्सदृश फलम।
सदसद्वा निदर्श्येत यदि तत स्यान्निदर्शनम ॥

(काव्यादर्श, 2/348)

उदाहरण है—

उदयन्नेष सविता पद्मष्वर्पयति श्रियम।
विभावयितुमृद्धीना फल सुहृदनुग्रहम ॥

(काव्यादर्श 2/349)

यह सूय उदय होते ही कमला म लक्ष्मी (शोभा) को, यह जताने के लिए बाँट देता है कि बन्धुजनों के प्रति अनुग्रह ही समृद्धि का फल है।

यहीं पर उक्ति को यदि इस प्रकार से कहा जाता कि सूर्य उदय होने हो कमला म लक्ष्मी (शोभा) को बाँट देता है। महान लोग जानते ही है कि बन्धुजनों के प्रति अनुग्रह ही समृद्धि का फल है तो यह उदाहरण अर्थान्तराक्षेप अलकार हो जाता।

उत्प्रेक्षा

दण्डी का उत्प्रेक्षा अलकार का विवेचन महत्त्वपूर्ण है, इ होने एक प्रसिद्ध उदाहरण म जिसम सम्भवत उपमा की मान्यता चली आ रही थी, उत्प्रेक्षा की स्थिति होने का तत्त्वत व्याख्यान किया।

उत्प्रेक्षा का लक्षण है— प्रस्तुत किसी चेतन अथवा अचेतन के गुण क्रिया स्वरूप की अ यथा स्थिति की सम्भावना उत्प्रेक्षा अलकार है। जस मध्याह्न के सूय से स तप्त होकर हाथी कमलों स भरे सरोवर को रौंद रहा है, मानता हूँ कि वह सूय के पक्षधर इन कमलों का उन्मूलन करने क लिए स नद्ध है।"

(काव्यादर्श, 2/221-222)

अन्त म विवादास्पद उदाहरण को उद्धृत करते हुए आचार्य दण्डी लिखते हैं—

निम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जन नभ।
इतीदमपि भूयिष्ठमुत्प्रेक्षा - लक्षणान्वितम्॥

(काव्यादर्श, 2/226)

अन्धकार अगों में लेपन सा कर रहा है। आकाश अजन की वर्षा सा कर रहा है—इस प्रकार यह उक्ति भी उत्प्रेक्षा के उत्कृष्ट लक्षण स युक्त है।

इस उक्ति म इव पद के प्रयोग से भी दूसरे आलकारिक इसे उपमा का उदाहरण मानते रहे होंगे। पूरा छन्द है—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जन नभ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥

यहाँ उत्तरार्द्ध म सयोग स उपमा की ही स्थिति है – दुष्ट पुरुष की सेवा के समान इस अन्धकार म आख भी (कुछ देखने म) विफल हैं। किन्तु पूर्वार्द्ध म तो उत्प्रेक्षा ही है। पूर्वार्द्ध म उपमान की स्थिति नहीं है और शुद्ध रूप स यह उत्प्रेक्षा का उदाहरण है। जि होने इसे उपमा का उदाहरण माना उनका कहना था कि लिम्पति क्रिया का अपवाद दो प्रकार से प्रस्तुत किया जाना चाहिए— (1) लिम्प कर्त्ता (उपमान) (2) धात्वर्थ लेपन (साधारण धर्म) अर्थात् लिम्पति क कर्ता के समान तम का लेपन व्यापार।

दण्डी ने यहाँ उपमा की स्थिति का निराकरण करते हुए लम्बी व्याख्या दी

है। उस व्याख्या की मुख्य बातें ये है—

(1) यहाँ उपमान नहीं है, उपमान का अभिधान तिङन्त से नहीं होता 'लिम्पति' क्रिया में उसकी स्थिति नहीं मानी जा सकती।

(2) 'लिम्पति' को उपमान मानने पर साधारण धर्म नहीं रह जायेगा। जबकि 'लिम्पति' (लेपन व्यापार) या 'वर्षति' (बरसा होना क्रिया) साधारण धर्म ही है क्योंकि क्रिया भाव प्रधान होती है।

(3) यदि ऐसा कहें कि जो लेपन का कर्ता है उसके तुल्य अन्धकार' तो यहाँ उपमेय अन्धकार के लेपन में अंगों का सम्बन्ध नहीं हो पाता। और पुनः अंग कर्म के साथ लेपन रूप उभयगत साधारण धर्म हमें खोजना होगा, जिसके बिना उपमा की सिद्धि असम्भव है।

(4) इसे धर्मलुप्ता उपमा भी नहीं कह सकते क्योंकि लिम्पति को उपमान मानकर तब उसके लेप रूप से अतिरिक्त किसी साधारण धर्म की प्रतीति सम्भव नहीं है।

अतः जैसे मन्ये शंके, ध्रुव प्रायः नूनम आदि पद उत्प्रेक्षा के वाचक है उनके समान ही इव पद भी उत्प्रेक्षा का बोध कराता है। और यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है उपमा नहीं है।

हेतु

आक्षेप के बाद महत्त्वपूर्ण अलंकार हेतु है। हेतु का लक्षण उसका नाम ही है—

हेतुश्चसूक्ष्मलेशौ च वाचामुत्तमभूषणम।
कारकज्ञापकौ हेतु तौ चानेकविधौ यथा॥ (काव्यादर्श 2/235)

हेतु सूक्ष्म और लेश वाणी के श्रेष्ठ अलंकार हैं। हेतु के कारक और ज्ञापक दो प्रकार हैं पुनः इन दोनों प्रकारों के अनेक भेद है। न्यायशास्त्र के अन्तर्गत हेतु के जो प्रकार बताये गये है दण्डी ने अलंकार प्रकरण में भी उन्हीं भेदों में उक्ति विकल्पों का आकलन किया है। उन्होंने हेतु के पन्द्रह प्रकार दिये है।

स्वभावोक्ति वर्ग के अलंकारों में हेतु का अपना महत्त्व है। इसके उदाहरणों में ध्वनि सिद्धान्त का स्वरूप अनायास प्रकाशित हो रहा है। कारक हेतु में विकार्यकर्मविषयक हेतु-अलंकार का उदाहरण है—

उत्प्रवालान्यरण्यानि वाप्यः सफुल्लपंकजाः।
चन्द्रः पूर्णश्च कामेन पान्थदृष्टेर्विषं कृतम॥

(काव्यादर्श 2/242)

अर्थात नये किसलयों से भरे वन फूले कमलों से भरी बावडियाँ और पूर्ण चन्द्रमण्डल—तीनों ही काम द्वारा राही की आँखों में विष कर दिये गये हैं।

यहाँ लक्षण के अनुसार किसलयों से भर वन आदि का विष होना विशेष हेतु है। परन्तु वस्तुत विष पर दिये गये हैं (यामेन विष कृतम्) में 'विषम' का अपना उद्‌भट अर्थ को तिरस्कृत कर इस अर्थ का बोध कराता है कि वियोगी पात्र उन आह्लादकारक वस्तुओं को देखने में असमर्थ है। और इस प्रकार यह अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है।

इसी प्रकार अन्योऽन्याभाव हेतु का उदाहरण है जिसको अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि भी कह सकते हैं—

वनान्यमूनि न गृहाण्यता नद्यो न योषित ।
मृगा इमे न दायादास्तन्मे नन्दति मानसम् ॥ (काव्यादर्श 2/249)

ये (शान्त) वन हैं (चित्त को उद्विग्न करनेवाले) घर नहीं हैं ये (स्वच्छ जल से युक्त) नदियाँ हैं, (मन को चंचल करनेवाली) स्त्रियाँ नहीं हैं। ये (सरल) हरिण हैं (मत्सर मोह से भरे) कुटुम्बी सम्बन्धीजन नहीं हैं इसलिए मेरा मन प्रसन्न हो रहा है। यहाँ वन-गृह आदि का अन्योन्याभाव (भेद-अन्तर) मन की प्रसन्नता के प्रति कारण है इसलिए अन्योन्याभाव हेतु अलंकार है।

दूसरी ओर इस उक्ति में घर स्त्रियाँ तथा दामाद पद अपने सामान्य अर्थों से दूर होकर नाना जंजालों के आगार वासना और मोह-कलह के मूल ईर्ष्या-द्वेष के अर्थों में संक्रमित हो रहे हैं। अत ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार अर्थान्तरसंक्रमित वाच्यध्वनि की अभिव्यक्ति इस काव्योक्ति में है।

काव्यादर्श में ज्ञापक हेतु का सहज उदाहरण जो उद्धृत हुआ, वह बाद में व्यंग्य (ध्वनि) के क्षेत्र में अर्थ की नाना अभिव्यक्तियों का व्यंजक मान लिया गया, काव्यशास्त्रीय चिन्तन के इतिहास में इस अनुच्छेद को भुलाया नहीं जा सकता। ज्ञापक हेतु का उदाहरण है—

गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिण ।
इतीदमपि साध्वेव कालावस्थानिवेदिने ॥

(काव्यादर्श 2/244)

अर्थात् सूर्य अस्ताचल को गया चन्द्रमा चमकने लगा, पक्षीगण घोंसलों को जा रहे हैं। इस प्रकार की यह युक्ति भी काल विशेष के निवेदन में आलंकारिक चमत्कार से युक्त है।

इस युक्ति में इस ज्ञापक हेतु अलंकार से अधिक चमत्कारजनक वह व्यंग्य अर्थ है जो कालावस्था निवेदक ज्ञापक के आधार पर प्रकरण वक्ता बोद्धा आदि की दृष्टियों से अनेकविध अभिव्यक्त होने लगता है। सूर्य डूब गया, चन्द्रमा चमक रहा है, पक्षी घोंसले की ओर जा रहे हैं अर्थात् अब रात हो रही है यह प्रेमिका से मिलने का समय है अथवा अब काम करना बन्द करो, या गायों को गोष्ठ (व्रज) में ले जाओ, अथवा विरहिणी चिन्तित हो रही है कि सूर्य डूब गया है पर प्रिय

नहीं आया, आदि।

हेतु के सभी उदाहरण ध्वनि-तत्त्व का संस्पर्श करते है। काव्योक्तियों के सौन्दर्य विवेचन के क्षेत्र में दण्डी का यह सर्वथा मौलिक योगदान है।

अतिशयोक्ति तथा अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार दण्डी के सामने नये कल्पित हो रहे थे। अतिशयोक्ति की जितनी प्रशंसा स्वयं दण्डी ने की है और बाद के आलंकारिकों ने भी की है उस दृष्टि से दण्डी ने इसका विवेचन अल्प किया है केवल चार उदाहरण दिये है और अप्रस्तुतप्रशंसा का केवल एक उदाहरण है।

अतिशयोक्ति

इस अलंकार का लक्षण दिया गया है—

विवक्षा या विशेषस्य लोकसीमातिवर्तिनी।
असावतिशयोक्ति स्यादलंकारोत्तमा यथा॥ (काव्यादर्श 2/214)

अर्थात विशेष रूप से लोक सीमा को तोड़कर, प्रस्तुत वस्तु की जो वर्णन कल्पना की जाती है, वह अलंकारों में उत्तम अतिशयोक्ति है।

इसकी प्रशंसा में उन्होंने कहा कि वाचस्पति द्वारा प्रतिष्ठित इस अतिशय नाम की उक्ति को आचार्यों ने दूसरे अलंकारों का भी एकमात्र उपकारक कहा है'—(काव्यादर्श, 2/220)और इसका उदाहरण निम्न प्रकार कल्पित किया है—

मल्लिकामालभारिण्य सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दना।
क्षौमवत्या न लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नायामभिसारिका॥
(काव्यादर्श, 2/215)

मल्लिका फूलों की धवल मालाएँ पहने हुई, सम्पूर्ण अंगों में चन्दन का लेप किये उज्ज्वल रेशमी परिधान धारण किये अभिसारिकाएँ चांदनी रात में दिखायी नहीं पड़ती।

अप्रस्तुत प्रशंसा

अप्रस्तुत प्रशंसा का लक्षण है—

अप्रस्तुतप्रशंसा स्यादप्रक्रान्तेषु या स्तुति। (काव्यादर्श, 23 40)

अर्थात प्रस्तुत की निन्दा के लिए जो अप्रस्तुत की स्तुति की जाती है वह अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

उदाहरण है—

सुख जीवन्ति हरिणा वनेष्वपरसेविन।
अन्यरयत्नसुलभैस्तृणदर्भाङ्कुरादिभि॥ (काव्यादर्श 2 34)

वन में दूसरों की सेवा से दूर रहकर हरिण बिना यत्न के ही सुलभ घास कुश के अंकुर आदि खाकर सुख का जीवन बिताते हैं।

इस उक्ति म राजसेवा स कष्ट पाकर कोई राजसेवक हरिणा की प्रशसा के बहाने अपनी कष्टप्रद स्थिति की निन्दा कर रहा है।

अप्रस्तुतप्रशसा का यही एक उदाहरण दिया गया है। इस नय कल्पित हो रहे अलकार के प्रति बाद म कवियो तथा आलकारिको—दोनो का आकषण अधिक बढता गया।

श्लेष

श्लेष का प्रयाग प्राय सभी अलकारा मे चमत्कार उत्प न करता है वक्रोक्तिमूलक अलकारा म विशेष रूप स। उपमा रूपक, आक्षेप, यतिरेक आदि अलकारा म इसक प्रयाग से उक्ति का सौन्दय बढ जाता है यह बात मामान्य रूप स दखी जाती है। सच बात है कि श्लेष की उदभावना के मूल म उपमा, रूपक का ही विधान है जब दो वण्य वस्तुओ के समान धम की एकरूप कथन करन के लिए यदि वे एक न हो रह होगे शिलष्ट पदा का सहारा लेना पडा और श्लेष का ज म हुआ। श्लेष का लक्षण है—

शिलष्टमिष्टमनेकाथमकरूपान्वित वच।
तदभिन्नपद भिन्नपदप्रायमिति द्विधा॥ (काव्यादश 2/310)

एक रूप म अन्वित वचन (वण वाक्य) जा अनेक अथ का प्रतिपादक हा, श्लेष अलकार माना जाता है। यह दा प्रकार स होता है—अभिन्नपद भिन्नपद प्राय। अभि नक्रिया अविरुद्धक्रिया विरुद्धकमा नियमवान नियमाक्षेपोक्ति अविरोधी विरोधी—इन दूसरे भेदा का उल्लख भी दण्डी करत है जो वस्तुत भद प्रकार न होकर उक्ति-प्रकार ही हैं।

श्लेष का अच्छा उदाहरण पीछे व्यतिरक अलकार क प्रसग म दिया गया है— त्व समुद्रश्च दुर्वारौ।

नियमवान श्लेष का उदाहरण दखिए जो वस्तुत उक्ति प्रकार विशेष ही है—

निस्त्रिशत्वमसावेव धनुष्यवास्य वक्रता।
शरष्वेव नरेन्द्रस्य मागणत्व च वतते॥ (काव्यादश, 2/319)

इस राजा के राज्य मे तलवार म ही निस्त्रिशत्व (तीस अगुल स अधिक परिमाण) है हृदय म निस्त्रिशत्व (निदयता) नही है इसकी धनुष म ही वक्रता (सधान क समय टेढापन) है मन म वक्रता (कुटिलता) नही है बाणो म ही मागणत्व (गति का वग) है प्रजाजनो म मागणत्व (याचकता) नही है।

स्वभावोक्ति वग क अलकारो म स्वभावोक्ति, दीपक, प्रय रसवत ऊजस्वि की ललित उक्तियाँ दण्डी न उदाहरण के रूप म दी है।

स्वभावोक्ति

पदार्थों के नाना अवस्थाओं—जाति, गुण क्रिया द्रव्य रूपों को साक्षात् दर्शाने वाली उक्ति स्वभावोक्ति और जाति कही जाती है, यह आदि अलंकार है—

नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालङ्कृतिर्यथा॥
(काव्यादर्श, 2/8)

क्रिया स्वभावोक्ति का उदाहरण है—

कलक्वणितगर्भेण कण्ठेनाघूर्णितेक्षणः।
पारावतः परिभ्रम्य रिरंसुश्चुम्बति प्रियाम्॥
(काव्यादर्श 2/10)

कपोत अपनी आंखें तिरछी किये कण्ठ से मधुर ध्वनि करके घूमता हुआ रमण की इच्छा में प्रिया को चूम रहा है।

दीपक

दीपक का लक्षण भी स्वभावोक्ति की सरणि पर है—

जातिक्रियागुणद्रव्यवाचिनैकत्र वर्तिना।
सर्ववाक्योपकारश्चेत् तमाहुर्दीपकं यथा॥ (काव्यादर्श, 2/97)

जाति क्रिया गुण, द्रव्यवाचक पद यदि एक वाक्य में स्थित होकर सभी वाक्यों के अर्थ के उपकारक हों तो उसे दीपक अलंकार कहते हैं।

इन चार प्रकारों के अतिरिक्त दीपक के उक्तिपरक अन्य भेद भी कल्पित किये हैं। अर्थावृत्ति पदावृत्ति तथा उभयावृत्ति भी दीपक अलंकार के अन्तर्गत आते हैं।

मध्यगत जाति दीपक का उदाहरण है—

नृत्यन्ति निचुलोत्सङ्गे गायन्ति च कलापिनः।
बध्नन्ति च पयोदेषु दृशो हर्षाश्रुगर्भिणीः॥
(काव्यादर्श 2/103)

बेंत के कुंजों में मयूर नाच रहे हैं, गा रहे हैं और आनन्द के आंसू भर नेत्रों से बादलों की ओर देख रहे हैं। यहां मयूर (कलापी) एक ही पद के अन्वय से तीनों क्रियाओं के अर्थबोध में जो सौन्दर्य प्रकट हो रहा है, वह दीपक अलंकार है।

प्रेम रसवत और ऊर्जस्वि नितान्त भावपरक अलंकार की उक्तियां हैं। रसवत के उदाहरणों में दण्डी ने उन उक्तियों की रचना उद्धृत की है जिनको बाद

म काव्य के क्षेत्र म रस रूप म स्वीकृति प्रदान की गयी है। इन उदाहरणा म उन्होंने शा त रस को नही लिया है शेष आठो रसा के उदाहरण रसवत अलकार के रूप म दिये हैं।

प्रेय रसवत, ऊर्जस्वि

इन अलकारो का लक्षण एक ही कारिका म है—

प्रेय प्रियतराख्यान रसवद रसपेशलम।
ऊर्जस्वि रूढाहङ्कार युक्तोत्कर्षम च तत त्रयम॥

(काव्यादर्श 2/275)

अतिशय प्रीतिकर कथन प्रेय रस स अन्वित रमणीय (आनन्दकर) उक्ति रसवद और निसम अहकार व्यक्त हो एसा कथन ऊर्जस्वि है— ये अलकार-सज्ञा क व्यवहार के उपयुक्त वसी शोभा क उत्कर्षकारक तीन अलकार हैं। वाद के आलकारिको न प्रेय को ही देवादिविषयक रतिभाव कहा है। दण्डी का उदाहरण है

सोम सूर्यो मरुद्भूमिर्व्योमहोतानलो जलम।
इति रूपाण्यतिक्रम्य त्वा द्रष्टु देव क वयम॥

(काव्यादश 2/278)

यह राजा रातवर्मा की उक्ति है जिसम उन्हान शिव का साक्षात्कार होन पर भाव विभोर होकर कहा है - हे देव सोम सूय मरुत भूमि आकाश होता अग्नि तथा जल आपक अलग अलग दिखायी पडनवाले इन आठ रूपो स आगे बढकर साक्षात आपका दशन करन क लिए समथ हम कौन हो सकते हैं? यह आपकी कृपा है जो हम आपका दशन मिला।

रसवत म वीररस का उदाहरण है—

अजित्वा सार्णवामुर्वीमनिष्ट्वा विविधमखै।
अदत्वा चार्थमर्थिभ्या भवेय पार्थिव कथम॥

(काव्यादर्श, 2/284)

समुद्रपय त पृथ्वी को न जीतकर अनक यज्ञो स देवो को प्रस न न कर याचको को धन न देकर मैं राजा कैसे होऊँगा? इस कथन म उत्साह भाव उत्कष प्राप्त कर वीर रस क रूप म सूक्ति की वाणी को रसवत्ता प्रदान कर रहा है।

रसवत अलकार का उपसहार करत हुए कहा है कि प्रथम परिच्छेद म माधुय गुण क प्रसग म वाक्य के अ ग्राम्यता मूलक रस को दर्शाया गया है और यहाँ कवल आठ प्रकार से रस क अधीन वाणी (सूक्ति) की रसालकारता दिखायी गयी है। माधुय गुण के रस स यह भिन्न है। (काव्यादश 2/292)

ऊर्जस्वि का उदाहरण है—

अपकर्त्ताऽहमस्मीति हृदि ते मा स्मभूद्भयम ।
विमुखेषु न मे खड्ग प्रहर्तुम् जातु वाञ्छति ॥

(काव्यादर्श, 2/293)

तुमने मेरा अपकार किया है—यह सोचकर तुम्हारे हृदय में भय न हो अब जब तुम युद्ध में पराजित होकर विमुख हो गये हो मेरे अधीन हो मेरा खड्ग तुम पर प्रहार करने की इच्छा नहीं रखता।

किसी अभिमानी वीर ने युद्ध में पराजित शत्रु को बन्दी बनाकर, इस प्रकार लज्जा उत्पन्न करनेवाली वाणी से फटकार कर मुक्त कर दिया है। यह गवभरी उक्ति ऊर्जस्वि अलकार है।

भाविक

भाविक अतिम अलकार है। प्रबन्ध रचना विषयक गुण को भाविक कहते हैं। कवि का अभिप्राय भाव है, उससे प्रवत्त क्रियारत रचमान स्थिति भाविक है जो काव्य की समाप्ति तक सवत विद्यमान रहती है—

तद्भाविकमिति प्राहु प्रबन्धविषय गुण।
भाव कवेरभिप्राय काव्यष्वासिद्धि सस्थित ॥

(काव्यादर्श, 2/364)

काव्य मे जो कुछ है, सौन्दय है, अलकार है—

अलकार व्याख्यान का उपसहार करते हुए दण्डी लिखते हैं कि आगमान्तर—नाटयशास्त्र मे भी जो सन्धि वत्ति एव उनके अग तथा लक्षण आदि सौन्दर्या-धायक धम कहे गये हैं वह सब मुझे अलकार के रूप मे ही इष्ट है। अलकृत उक्तियो का विस्तार बहुत अधिक है मैंने सक्षेप कर एक सीमा मे अलकार माग का व्याख्यान किया है। अनेक तरह से विविध सूक्तियो मे स्थित अलकारो के भेद व्याख्यान कर नही बताये जा सकते काव्य रचना करनेवाला कवि या सतत काव्य परिशीलन करनेवाला ही इनको जान सकता है।

(काव्यादर्श 2/367—368)

4

दण्डी का पद-लालित्य

कालिदास की उपमा और भारवि के अथ गौरव के साथ दण्डी के पद-लालित्य की प्रशसा की जाती है। बाद मे कवि माघ को अधिक महत्त्व देने के लिए कहा गया कि उनम य तीनो ही विशेषताएँ ह, वस्तुत माघ को इन कवियो की परम्परा मे लाने के लिए यह उक्ति कही गयी—

उपमा कालिदासस्य भारवरथगौरवम।
दण्डिन पद लालित्य माघे सन्ति त्रया गुणा ॥

दण्डी की काव्य सूक्तिया काव्यादश' मे उदाहरणा के रूप म हम प्राप्त है इनक अतिरिक्त भी उनकी रचनाएँ रही हागी जो उन्होने स्वय विदग्धगाष्ठिया म सुनायी होगी पर आज अप्राप्त हैं। दण्डी कवि और काव्य रचना के गुण दाषा क विवेचक दानो थे वे अपन समय के वदभ माग के प्रतिनिधि कवि थे। काव्यादश के प्रथम परिच्छेद म उन्हान प्रसाद समता माधुय श्लेष आदि जिन गुणो का व्याख्यान किया है एव जिन गुणो के प्रयाग स काय की भाषा मे सौष्ठव नाद सौ दय, सगीतमयता पद-बधता आदि सहज सौ दय का उदय हा जाता है कवि दण्डी उन गुणो के सहज प्रयोक्ता थे। द्वितीय परिच्छेद म अलकारो के भेदोपभेदो म जो उदा हरण उन्होन रचे है उनम अथशोभा को चमत्कृत करनवाली उक्तिया के साथ वर्णो और पदा क विन्यास म प्रथम परिच्छेद क गुणा का वाणी सौन्दय भी सवत्र विद्यमान है। यद्यपि कवि न प्राय अनुष्टुप छन्द का ही प्रयाग किया है ता भी आठ वर्णो क लघु आकार के इस छन्द म उसका उदात्त कवित्व प्रस्फुटित हुआ ह सभी छन्दा म वाणी का माधुय और अथ की सहजता विद्यमान है। यही दण्डी का पद लालित्य है, जिसकी समानता आदिकवि वाल्मीकि और कालिदास म ही देखी जा सकती है।

यहा उनके पद लालित्य के प्रमाण म काव्यादश स कतिपय छ द उद्धत किय जात हैं। इन छन्दो को विषयानुसार भी दखा जा सकता है।

वर्षा वणन

श्यामला प्रावषण्याभिर्दिशो जीमूतपक्तिभि ।
भुवश्च सुकुमाराभिनवशादवलराजिभि ॥ (काव्यादश 2/100)

वर्षाकाल मे उमडती हुई बादल की कनारो से दिशाएँ श्यामल हो गयी और भमि के खण्ड घासो के नय सुकुमार अकुरा से।

हरत्याभोगमाशाना गह्णाति ज्योतिषा गणम ।
आदत्ते चाद्य मे प्राणानसौ जलधरावली ॥

(काव्यादश 2/111)

उठती हुई मघमाला दिशाओ का विस्तार समट (सकुचित कर) रही है आकाश के नक्षत्रो को आत्मसात कर रही ह और इसक साथ (प्रिया वियोग मे) मेर प्राणो का भी ल लेना चाहती है।

विकसन्ति कदम्बानि स्फुटन्ति कुटजद्रुमा ।
उन्मीलन्ति च कन्दल्यो दलन्ति ककुभानि च ॥

(काव्यादश, 2/117)

वर्षाकाल म कदम्ब फूल रह हैं कुटज क वक्ष म कलियाँ आ गयी है। कन्दलिया के अकुर फूट रह हैं, अजुन के व न फूला स भग रह हैं।

नृत्यन्ति निचुलोत्सग गायन्ति च कलापिन ।
वध्नन्ति च पयोदेषु दशा हर्षाश्रुगर्भिणी ॥

(का यादश, 2/103)

वर्षा ऋतु म मयूर बेंत के कुञ्जा म नाच रह है, गा रहे है और बादला की आर बार-बार आनन्द के आसू से पूरित आँखो स दख रह है।

मण्डलीकृत्य बर्हाणि कण्ठमधुरगीतिभि ।
कलापिन प्रनत्यन्ति काले जीमूतमालिनि ॥

(कान्यादश, 1/70)

मेघमाला से घिर वर्षाकाल म मयूर अपने पखा का मडलाकार फैलाकर कठा स मधुर केका ध्वनि करते हुए नाच रह हैं।

शरद् ऋतु

अपीतक्षीवकादम्बम असमृष्टामलाम्बरम ।
अप्रसादितशुद्धाम्बु जगदासी मनाहरम् ॥

(कान्यादश 2/200)

बिना मदपान के ही हसगण मतवाले हो रह है बिना झाड़ू लगाय ही आकाश स्वच्छ हो गया है, कतकादि द्रव्या का प्रयोग किय बिना ही जल शुद्ध निमल है, इस शरत काल म सारा जगत मन के लिए सुहावना हो गया।

किमय शरदम्भाद किं वा हसकदम्बकम ।
रुत नूपुरसवादि श्रूयते तन्न तायद ॥

(काव्यादश 2/163)

क्या यह शरत्काल का धवल मेघ-खण्ड है अथवा हंसों की कतार है? नूपुर की झंकार के समान कलगान सुनायी पड़ रहा है इसलिए बादल नहीं हैं। (हंसों का समूह जा रहा है)।

कूजित राजहंसानां वर्धते मदमञ्जुलम्।
क्षीयते च मयूराणां रुतमुत्क्रान्त-सौष्ठवम् ॥
(काव्यादर्श 2/334)

शरद् ऋतु में मतवाले राजहंसों का मनोहारी कूजन चारों ओर गूंजने लगा और मयूरों की केका ध्वनि सौष्ठव खोकर क्षीण होने लगी।

वसन्तागमन

कोकिलालापसुभगाः सुगन्धिवनवायवः।
यान्ति सार्धम् जनानन्दैर् वृद्धिं सुरभिवासराः ॥
(काव्यादर्श 2/354)

कोकिलों के आलाप से मुखरित और वन के फूलों की सुगन्धि से वासित वसन्त के दिन सौरभ बिखेरते हुए लोगों के आनन्द के साथ साथ जवान हो रहे हैं।

चन्दनारण्यमाधूय स्पृष्ट्वा मलयनिर्झरान्।
पथिकानामभावाय पवनोऽयमुपस्थितः ॥
(काव्यादर्श, 2/238)

चन्दन के वनों को झकझोर कर, मलय पर्वत से झरनेवाले निर्झरों में नहाता हुआ यह पवन विरही पथिकों का प्राण लेने के लिए उपस्थित हो गया।

उद्यानसहकाराणाम् अनुद्भिन्ना न मञ्जरी।
देय पथिकनारीणां सतिलं सलिलाञ्जलिः ॥
(काव्यादर्श, 2/251)

आम के बगीचों में मंजरी अनकुरित नहीं रह गयी (अर्थात् बौर आ गये) अब प्रवास में पड़े पथिकों की स्त्रियों को मरणोत्तर तिल की जलांजलि देना ही है। (प्रिय के विरह में स्त्रियाँ जीवित नहीं रहेंगी)।

उद्यानमारुतोद्धूताश्चूतचम्पक रेणवः।
उदश्रयन्ति पान्थानामस्पृशन्तो विलोचने ॥
(काव्यादर्श 2/338)

बगीचे के पवन से आम्रमंजरी और चम्पकपुष्प की उड़ायी गयी धूल विरही पथिकों की आँखों को बिना छुए ही आँसुओं से भर दे रही है।

वर्धते सह पान्थानां मूर्च्छया चूतमंजरी।
पतन्ति च समं तेषामसुभिर्मलयानिलाः ॥ (काव्यादर्श 2/353)

उधर वनो म आम्र की मजरी के अकुर बढ रहे हैं इधर विरही पथिको को मूर्च्छा आ रही है। उधर मलय पवन झकझार रहा है इधर उनके प्राण छूट रहे हैं।

नारी-सौन्दय

अमतात्मनि पद्मानां द्वेष्टरि स्निग्धतारके।
मुखेन्दौ तव सत्यस्मिन्नपरेण किमिन्दुना॥

(काव्यादश 2/159)

बाले! अमतरस म भरे समानता म कमला का नीचा करनवाले, स्नह-पूण (आँखो की) तारिका म युक्त तुम्हारे मुख चन्द्रमा के रहत आकाशचारी किसी दूसरे चन्द्रमा की क्या आवश्यकता है?

मल्लिकामालभारिण्य सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दना।
क्षौमवत्या न लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नायामभिसारिका॥

(काव्यादश, 2/215)

मल्लिका फूलो की माला पहने सारे शरीर म चन्दन का अगराग लगाये, धवल रेशमी परिधान म सज्जित अभिसारिकाएँ चाँदनी रात मे दिखाई नही पडती हैं।

बध्नन्नङ्गेषु रोमाञ्च कुर्वन् मनसि निर्वृतिम।
नेत्रे चामीलयन्नेष प्रियास्पर्श प्रवत्तत॥

(काव्यादश 2/11)

अगो को रोमाच म पुलकित करता मन म आनन्द उडेलता नेत्रो को आमीलित (बन्द) करना प्रिया का स्पश अभिव्यक्त हो रहा है।

मन्दरक्तकपालेन मन्मथस्तव मुखेन्दुना।
नर्त्तितभ्रूलतेनाल मदितु भुवनत्रयम॥ (काव्यादश, 2/80)

बाले! कामदव मद से लाल तुम्हारे कपोल से, चन्द्रमा के समान सुहावने मुख से नाचती हुई भौहरूपी लता से तीनो लोको का परास्त करन म समर्थ है।

चन्द्रमा पीयत देवैर्मया त्वन्मुखचन्द्रमा।
असमग्रोऽप्यसौ शश्वदयमापूर्णमण्डल॥

(काव्यादश, 2/90)

दवगण चन्द्रमा का अमत पीते है पर उसका मण्डल अधूरा भी रहता है, मैं तुम्हारे मुख चन्द्रमा का पान करता हूँ जो यह सदा पूणमण्डल रहता है।

आविर्भवति नारीणा वय पर्यस्तशैशवम।
सहैव विविधै पुसामङ्गजोन्मादविभ्रमै॥

(काव्यादश 2/256)

बाल्यावस्था को दूरकर नारियों की युवावस्था पुरुषों के लिए कामजनित विविध विकारों के साथ ही आविर्भूत होती है।

आनन्दाश्रु प्रवृत्त मे कथं दृष्ट्वैव कन्यकाम्।
अक्षि मे पुष्परजसा वातोद्धूतेन कम्पितम् ॥

(काव्यादर्श 2/267)

अरे ! यह तो विवाह मण्डप में आती कन्या को देखकर मेरी आँखों में आनन्द के आँसू आ गये (मेरे भाव को दूसरा न जान ले अतः स्थिति को दूसरी तरह स्पष्ट करता हूँ) आह पवन से उड़कर आमों फलों की धूल मेरी आँखों में कम्पन पैदा कर रही है।

इतर सूक्तियाँ

वाणी की महिमा

इदम् अन्धंतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ॥

(काव्यादर्श, 1/4)

यह जगत् जब से उत्पन्न हुआ तब से यदि शब्द नाम की ज्योति न प्रकाशित रहती तो यह सम्पूर्ण तीनों लोक (देव मनुष्य तथा इतर जातियाँ) गहन अन्धकार में डूब जाते।

गुणदोषानशास्त्रज्ञः कथं विभजते जनः।
किमन्धस्याधिकारोऽस्ति रूपभेदोपलब्धिषु ॥

(काव्यादर्श, 1/8)

जो जन शास्त्र को नहीं जानता है वह गुणों और दोषों की पहचान कैसे कर सकता है क्या अन्ध व्यक्ति को सौंदर्य भेद के निर्णय का अधिकार है ?

आदिराजयशोबिम्बमादर्शं प्राप्य वाङ्मयम्।
तेषामसन्निधानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति ॥

(काव्यादर्श, 1/5)

आदिकाल के जो राजा थे उनका यशोबिम्ब कवि के काव्यरूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर आज उन राजाओं के न रहने पर भी स्वयं नहीं नष्ट होता, (वाङ्मय में प्राप्त अमरता का यह आश्चर्य) देखो !

महाकाव्य की अमरता

अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः ॥

सवत्र भिन्नवत्तान्तैरुपत लोकरञ्जकम ।
काय कल्पान्तरस्थायि जायत सदलङ्कृति ॥

(काव्यादश, 1/18 19)

अनक वणनो म शोभित, जिसम कथ्य विस्तार से कह गय हो, कथारस और भावा से परिपूण, कथावस्तु ऐसे सर्गों मे विभाजित हा जो सग लम्बे न हो सर्गों म छन्द सुनने योग्य, पठनीय हा सग के अ त म छ द बदल दिया गया हो, कथा की सन्धियो से युक्त हो य सग, कथा के प्रवाह म अलकार की सूक्तियाँ बीच-बीच मे निबद्ध हो— ऐसा महाकाव्य लाक रजक होकर युगो के कल्प तक अमरता के लिए प्राप्त कर लेता है।

शिव की छवि

कण्ठे काल करस्थेन कपालेन दुशेखर ।
जटाभि स्निग्धताम्राभिराविरासीद् वृषध्वज ॥

(काव्यादश,

कण्ठ म नीली छवि हाथ म भिक्षा का कपाल, शीश पर चन्द्रमा, छवि के रग की चिकनी जटाओ स युक्त, वृषकेतु शिव प्रकट हुए।

व्यसन का जन्म

अनभ्यासेन विद्यानामससर्गेण धीमताम ।
अनिग्रहण चाक्षाणा जायत व्यसन नणाम ॥

(काव्यादश, 2/247)

विद्याओ का ज्ञान न प्राप्त करने से, बुद्धिमाना की सत्सगति न होन स और इन्द्रिया का सयम न रखन स मनुष्या मे व्यसन (दुष्कम) उत्पन्न हात हैं।

ससार की असारता

गत कामकथोन्मादो गलितो यौवनज्वर ।
क्षतो माहश्च्युता तृष्णा कत पुण्याश्रमे मन ॥

(काव्यादश, 2/248)

हृदय स काम कथा का उन्माद जाता रहा क्योकि जवानी का ज्वर उतर गया, माह नष्ट हुआ, विषय-लालुपता विनष्ट हुई, अब मरे मन न पुण्याश्रम (तपोवन) म जाने का निश्चय कर लिया है।

जीवन की असफलता

> अर्थो न सम्भृत कश्चिन्न विद्या काचिदर्जिता।
> न तप सञ्चित किञ्चिद् गत च सकल वय ॥
>
> (काव्यादर्श, 2/161)

जीवन म न कोई धन प्राप्त किया, कोई विद्या भी नहीं पढ सका, न तो सदाचरण म कोई तप ही सचित किया—सारी उम्र एस ही व्यथ बीत गयी।

महापुरुष वृक्ष के समान

> अनल्पविटपाभोग फलपुष्पसमृद्धिमान्।
> सोच्छ्राय स्थयवान दैवादेष लब्धो मया द्रुम ॥
>
> (काव्यादर्श, 2/210)

भाग्य से ही मैंने इस वक्ष (महापुरुष) को प्राप्त किया है जिसका अनेक शाखाओं का लम्बा विस्तार है, जो फल फूल से भरा-पूरा है जो ऊँचाई स युक्त है और जिसकी जड़ें बडी दृढ हैं। (अर्थात इसकी छाया मे जीवन-काल तक विश्राम कर सकगा।)

5

काव्यादर्श का समाज

'काव्यादर्श' म उदाहरण के रूप म उद्धत सूक्तिया को पढकर जिनक रचयिता दण्डी ही हैं कवि दण्डी के देश काल तथा समाज का आभास हम हो ही जाता है। यह आभास बहुत विस्तृत तो नही है, पर जितना है और जो कुछ है अपने म समग्र है।

दण्डी का देश काल यह था कि किसी भी सूक्ति म इस बात के सकेत नही मिलते कि देश म कोई सावभौम सम्राट था, प्रशसा के रूप म राजा के राज्य भोग तथा राजा की विजय की जो बातें कही गयी हैं, वह उक्ति मात्र हैं और इस बात की साक्षी हैं कि देश म जनपद क या चार-दश जनपदो के छोटे छोटे राजा थे। प्रान्त या मण्डल का या दो चार मण्डलो का राजा कोई-कोई ही हुआ करता था। कवि एस ही एक राजा के सम्बन्ध म कहता है कि आपको इस बात का अभिमान न हो कि इस भूतधारिणी पृथ्वी को जीत लिया है अतीत म तपस्वी परशुराम न भी इस पृथ्वी को विजय किया था। (काव्यादर्श, 2/344) एक दूसरे राजा की प्रशसा म कवि कहता है कि राजन! इक्ष्वाकु वश म उत्पन्न आपके लिए उचित नही है कि पुराणपुरुष विष्णु (राम) की श्री (राज्यलक्ष्मी, स्त्री) को उनसे छीनकर उपभोग कर रहे हैं। (काव्यादर्श 2/345) अर्थात दण्डी के काल म अपने को इक्ष्वाकु वश का कहनेवाला राजा विद्यमान था। राजा की सभा सज्जनो के लिए उस युग म भी उपयुक्त नही थी, ऐसे सज्जन सभासद से सुखी जीवन वन म स्वतन्त्र विचरण करनेवाले हरिणो का है, जो बिना यत्न के प्राप्त घास कुश के अकुर खाकर जीवन व्यतीत करते हैं। (काव्यादर्श, 2/341)

उपमा के प्रकरण म एक उदाहरण इस प्रकार दिया गया है—हे पृथ्वीपाल! आपके समान ही देवराज इन्द्र शोभा पाते हैं। (काव्यादर्श 2/53) इस उदाहरण म यह आपत्ति की गयी कि मनुष्य राजा को इन्द्र का उपमान कसे बनाया जा सकता है? राजा इन्द्र देवता से हीन है। किन्तु उत्तरार्द्ध मे ही कवि ने इसका समाधान किया कि राजा अपने तेज से अणुमान सूर्य की समानता प्राप्त करने म समर्थ है अत वह इन्द्र से हीन नही है और यह उपमा उपयुक्त है। इस सूक्ति मे मनुष्य को देवता का उपमान बनाये जाने पर भी काव्य की शोभा का उत्कर्ष

विद्यमान है, कम नहीं हुआ है। कवि दण्डी द्वारा राजा की यह प्रशंसा स्मृतिकार मनु और अपने युग के नीतिकार कामन्दक की कही हुई बातों का समर्थन है। दोनों ने ही राजा में देव अंश होने की घोषणा की है। मनु कहते हैं कि राजा मनुष्य रूप में महान देवता है। कामन्दक ने लिखा है 'वह देव, दण्डधारी राजा विजयी हो, जिसके प्रभाव से लोक एक निर्धारित सनातन पथ में स्थित रहता है, राजा इस जगत की स्थिति और अभ्युदय का कारण है, उसके अभाव में विनाश हो सकता है, विद्या और नीति में पारंगत विद्वानों का यही अभिमत है।" (कामन्दकीय नीतिसार 1/1 9 10) दण्डी ने इसी परम्परा में राजा को अपने तेज से सूर्य की तुलना करने में समर्थ बताया— 'अलमंशुमत: कक्षामारोढुम् तेजसा नृप।' (काव्यादर्श, 2/53)

धर्म की मान्यताएं बहुत कुछ राजा की शक्ति पर ही निर्भर करती थीं। दण्डी ने किसी राजा की प्रशंसा में माधुर्य गुण के उदाहरण में जो सूक्ति निबद्ध की है उसका अर्थ है—'इस ब्राह्मणप्रिय राजा ने जब से राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किया तब से ही इस लोक में धर्म का उत्सव हो रहा है।' (काव्यादर्श, 1/53)

कवि ने पूरे काव्यादर्श में नामत: एक ही व्यक्ति का उल्लेख किया है वह है राजा रातवर्मा। इसके अतिरिक्त किसी नगर का भी नाम सूक्तियों में नहीं आया है। रातवर्मा का उल्लेख उसकी शिव भक्ति के प्रसंग में है और कारिका प्रेयालङ्कार का उदाहरण है। राजा को शिव का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। इससे पुलकित होकर वह भगवान् शिव से प्रार्थना में कहता है कि हम तो आपको सोम, सूर्य, पवन, भूमि, आकाश, होता, अग्नि और जल—इन अष्टमूर्तियों में ही देख पाते थे इनको अतिक्रान्त कर जो आपका प्रत्यक्ष दर्शन हमें मिला वह आपकी कृपा के बिना हो नहीं सकता था। (काव्यादर्श, 2/278) राजा यज्ञों का आयोजक है। कवि ने धर्म के उत्सव और यज्ञ दोनों का नाम राजा से संबंधित करके लिया है। उत्सवों में यज्ञ भी रहा होगा। वीर राजा अपने राज धर्म की सार्थकता विविध यज्ञों द्वारा देवों को तृप्त करने में मानता था। (काव्यादर्श, 2/284)

कवि ने देश के भूगोल में केवल मलय पवन का नाम लिया है। सामान्य रूप से वर्णन वह वन, नदी, पर्वत, ऋतु, समुद्र आदि सभी का करता है किन्तु नाम से किसी का उल्लेख नहीं करता। यह प्रवृत्ति इस तथ्य का द्योतक है कि देश में किसी बड़े (विस्तृत) राज्य की सत्ता नहीं थी वैसी स्थिति में ही पर्वत, वन, नदी आदि नाम से देशवासियों के हृदय में उजागर होते हैं। कवि सम्प्रदाय की दृष्टि से उसने विदर्भ तथा गौड प्रदेशों का विभाजन किया है। इनकी दूसरी संज्ञा उसने दाक्षिणात्य और पौरस्त्य या अदाक्षिणात्य की है। उसके सामने कवि-गण देश के दक्षिण या पूर्व भाग के ही हैं, उत्तर के नहीं। मध्य प्रदेश (विदर्भ) दक्षिण के सम्प्रदाय में है।

ऋतुओ म वर्षा, शरद तथा शिशिर वसन्त के वणन की सूक्तियां आयी है। वर्षा-वणन की सूक्तिया ज्यादा है। नारी के मुख के उपमान क रूप म चन्द्रमा और कमल का नाम बहुत बार आया है, काम का वणन उसके पुष्प धनुष के साथ है। समुद्र का वणन उपमान के रूप म हुआ है। एक सक्ति म शरद ऋतु क चन्द्रमा की उपमा कुन्दपुष्प के स्तवक से दी गयी ह। (काव्यादर्श, 1/56) कुन्द, मल्लिका मलय चन्दन, बेतस (निचुल) आम्रमजरी तथा नय प्रवलाङ कुरा का प्रयाग सौन्दय बोध मे अनक बार हुआ है। मयूर हस तथा कोकिल अपनी ऋतुओ के साथ वर्णित हुए हैं। कपोत का वणन प्रेम व्यापार मे है।

काव्यादश में जिन देवा की चर्चा है वे है—सरस्वती वाराह शिव विष्णु इन्द्र, स्कन्द, वामन। सरस्वती की वन्दना कवि न स्वय की है (काव्यादश, 1/1) तथा कवियो को अहर्निश सरस्वती की उपासना करने का परामश दिया है। (काव्या० 1/104 105) पर सरस्वती की मूर्तिपूजा होती थी इसका सकेत नही है। वाराह और शिव के स्वरूप का वणन कवि करता है। वाराह की मूर्ति का निरूपण पहले परिच्छेद म अथव्यक्ति गुण के उदाहरण मे आया है—वाराह विष्णु पृथ्वी को ऊपर उठा रहे हैं, उनके चरणों के नीचे खुर से कुचले गय सर्पों के रक्त स समुद्र लाल हो गया है। (काव्यादर्श, 1/73 74) शिव क स्वरूप का वणन द्रव्य स्वभावोक्ति के उदाहरण मे है— तावे के रग की चिकनी जटाएँ, गले म नीला रग, सिर पर चन्द्रमा धारण किय तथा हाथ म (भिक्षा के लिए) कपाल लिये शिव प्रकट हुए। (काव्यादश 2/12) विष्णु गोविन्द और वामन के वणन कल्पित भावनाओ के हैं। (काव्यादश 2/101, 276, 81)। दक्ष प्रजापति और शक्तिधर स्कन्द को भी कवि न राजा का उपमान बनाया है। (2/321)।

सूक्तिया मे जो वणन आय है उनस पता चलता है कि दण्डी क सामन्त समाज का जीवन सुखी था। जीवन-यापन की कठिनाइया नही थीं। युवकों और प्रौढ़ा के हृदय नारी सौन्दय के प्रति राग-अनुराग तथा विलास क भावों म आन प्रान थ। अलकारो के उदाहरणा मे आयी शृगार भाव की सक्तियाँ इसका प्रमाण हैं। उदाहरणा में अधिक कान्योक्तियाँ नारी के रूप वणन, उसके प्रति अनुराग तथा अन्य शृगारिक चेष्टाओ की अभिव्यक्ति करती हैं। वियोग के वर्णन कम हैं। अनुष्टुप जसे छोटे छन्द म शृगार भाव का मार्मिक [illegible] विगम [illegible] क्रियात्मक भाव का चित्रण अवश्य है, [illegible] वियोग—[illegible] पक्ष कवि की सूक्ष्म, सहज प्रतिभा का व्याख्यान [illegible]। शृगार-वणनों [illegible] कल्पना का चित्रण न कर, किसी [illegible] का भाव को [illegible] आधार अवश्य बनाया गया है, [illegible] था, उसक सामने अपनी जीवन [illegible] था। [illegible] सकेत-स्थल पर मिलना (काव्यादर्श, 2 [illegible]-297), [illegible]

अनुराग को राजसेवकों से छिपाने का प्रयत्न (काव्यादर्श 2/266), युवती का प्रिय स मान करने के लिए सखी द्वारा शिक्षाभ्यास कराना (2/243), अपनी प्रिया की टेढी भौंह, फड़कते अधर, लाल आँखें देखकर उसस प्रिय का अपन स्वच्छ चरित्र का प्रमाण दना (2/131), अभिसारिकाओं की वेशसज्जा का चित्रण (2/215) आदि वणन सुखी एव विलासी समाज का प्रमाण दत हैं। वर्षा ऋतु म प्रिय तथा प्रिया—दोनो की उत्कण्ठाओं के ललित वणन हैं।

राजा और लक्ष्मीपति कवियों एव विद्वानो के आश्रयदाता थे। फल म भर घनी छाया और दृढ मूलवाले वक्ष के रूप म एसे आश्रयदाता को पाकर विद्वान् प्रसन्न हैं—(काव्यादर्श, 2/209 210)। सूक्तियो मे कहीं गुरुकुल के वणन नही आत। शृगार के भावा म इसके लिए अवकाश नही हो सकता था। युवकों क उच्छ खल होन की बात कही गयी है—दृष्टिरोधकर यूना यौवनप्रभव तम (काव्या० 2/197)। समाज म ऊँचे विचार के लाग भी थे, जिनका जीवन का अतिम भाग पवित्र तपावन म व्यतीत करने की इच्छा थी (काव्या० 2/248)।

6

दशकुमार चरित

रचना का देश-काल

'दशकुमार चरित' काम-कथाओं के प्रतिनिधि आख्यान के रूप में रची गयी ललित आख्यायिका है। ऐसा लगता है कि दशकुमार-चरित के समय के भारत का देश काल जीवन यापन की सुविधाओं से सम्पन्न था, देश पर विदेशी आक्रमण का भय नहीं था, आन्तरिक कलह यदि था तो केवल मान-सम्मान के लिए। छोटे छोटे मण्डलों के राजा थे, जो सम्मान के लिए युद्ध या अभियान अवश्य करते थे किन्तु राज्य हड़प लेने की प्रवृत्ति उनमें नहीं थी। देश में जैनायतन और बौद्धमठ प्राय सभी नगरों के समीप विद्यमान थे नगरों में भी थे। सुख समृद्धि के परिणाम-स्वरूप समाज की युवा पीढ़ी के सामने तरह तरह के व्यसनों के द्वार उन्मुक्त थे। द्यूत मद्यपान उपवन विहार नृत्य संगीत वेश्याओं का सहवास तो सामान्य बातें थीं इन व्यसनों के लिए उत्सवों के आयोजन भी होते थे। सामान्य राजकुमार भी किसी सुन्दरी राजकुमारी या बड़े लक्ष्मीपति सेठ की अनिंद्य सौंदर्यवती कन्या को प्राप्त करने के लिए कोई उपाय शेष नहीं रखता था।

'दशकुमार चरित' में प्रणय के रस नाना रागों-अनुरागों से ओत प्रोत कथाधारा से लहराती दशाधिक काम कथाओं का निबन्धन हुआ है। दश कथाएं तो राज कुमारों की है, कुछ अन्य कथाएँ इन कथाओं के सन्दर्भ में आ गयी हैं। इन कथाओं में अपनी प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए तन्त्र मन्त्र, कपट-जाल एवं ऐन्द्रजालिक (जादूगर) की नाना क्रियाओं के अभियान देखने को मिलते हैं जो इन कथाओं को गुणाढ्य की बृहत्कथा के समीप रखते हैं। बृहत्कथा लम्बकों में विभाजित है और प्रत्येक लम्बक में किसी न किसी नायक के विवाह की कहानी है। इसी प्रकार दशकुमार चरित का प्रत्येक उच्छ्वास उसमें वर्णित कुमार के कौतुकपूर्ण चरित के साथ किसी राजकुमारी से परिणय किये जाने की कहानी में समाप्त होता है।

इन कथाओं में ऐसी भी स्थिति का वर्णन आता है जब प्रेमी अपनी प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए उसको अपने विश्वास में लेकर उसके पुरुष पति को उसके सामने ही छल से मारकर, फिर काट काट कर आग में हवन कर देता है। तरुण

राजकुमार तथा विशारी राजकुमारी के रात्रि मिलन के अभिसार बडे साहसिक हैं उनका साहस चमत्कृत करता है और प्रेम रस से हृदय को तरल कर देता है। आध्यात्मिक भावना का जो तादात्म्य बाणभट्ट की कादम्बरी म दखन को मिलता है वह दशकुमार चरित' मे नही है। जन और बौद्ध भिक्षुणियाँ इन कथाओ मे राजकुमार या राजकुमारी की काम-दूती का कार्य करती हैं, ऐसे ही प्रसग गुणाढ्य की बहत्कथा म भी आते हैं। नौकाओ द्वारा समुद्र के द्वीपान्तरा स भारत के व्यापार किये जाने की चर्चा बहत्कथा मे तो बहुत है, दशकुमार चरित म भी द्वीपान्तर व्यापार की कहानी सन्दर्भ के रूप म अनुस्यूत होकर आयी हैं। अत इन कथाओ का कल्पना जगत बाणभट्ट की कादम्बरी और उसके समाज स अतिशय दूर नही तो एक युग की दूरी पर अवश्य है। अत दशकुमार चरित' का रचयिता दण्डी, कादम्बरी' के कथाकार बाणभट्ट से पहले हुआ है इसम सन्देह नही है।

इस प्रसग म दूसरी बातें भी हैं। चरित भाग के अष्टम उच्छवास म वर्णित विश्रुतचरित को लेकर कुछ विद्वानो का अभिमत है कि इस चरित म जो विदभ, अश्मक कुन्तल ऋचीक, मुरल और कोकण राज्यो के परस्पर युद्ध का वर्णन है, इन छोटे राज्यो और उनके परस्पर युद्ध की इस घटना की स्थिति छठी शती ईस्वी मध्य के इतिहास स मेल रखती है, ये छोटे राज्य नमदा के तट से लगकर स्थित थे अत दशकुमार चरित की रचना 550 ई० के आसपास की गयी होगी। यहा यह बात विचारणीय है कि विदभ का राज्य, जिस पर इन राज्यो न आक्रमण किया भोज वश का था। अन्धक वष्णि, भोज वश प्राचीन यादवो की शाखा हैं। अत भोजवश का अस्तित्व 550 ई० के आसपास था, इसमे सन्देह है, क्योकि हूणों का परास्त करनेवाले जनेन्द्र यशोधर्मा (532 ई०) के पश्चात नमदा के तट पर चालुक्य वश का उदय हो गया था, इस वश के प्रथम मुख्य राजा पुलिकेशी न कादम्बो को परास्त कर उनकी वातापी नगरी (बीजापुर जिले मे बादामी) को छीनकर 550 ई० के लगभग अश्वमध यज्ञ किया। उसका राज्य नमदा के काठे स पश्चिमी समुद्र तक विस्तृत था और शीघ्र ही उसका विस्तार उसके पुत्रो—कीर्ति-वर्मा और मगलेश—क समय पूर्वी समुद्र तट तक हो गया था। (विस्तार के लिए देखिए भारतीय इतिहास का उन्मीलन श्री जयचन्द्र विद्यालकार)।

इस स्थिति म विदभ का भोजवश तथा दूसरे अन्य छोटे राज्य 550 ई० के आसपास नमदा-तट पर सत्ता म थ सत्य नही है। दण्डी ने काव्यादश म इक्ष्वाकु वशीय राजा की प्रशसा की है (2/345)। इक्ष्वाकु वश तीसरी शता के मध्य म सत्ता म आया था। उसकी राजधानी श्रीपवत कृष्णा नदी के दक्षिण भाग म थी। ऐसे ही भोजवश भी इसी शताब्दी के आसपास सत्ता म रहा होगा। विश्रुतचरित म उक्त युद्ध क प्रसग में ऋचीक वश के एक वीर राजा का नाम आया है। ऋचीक या ऋषिक वश का शकों की शाखा कहा गया है। शको का राज्य दूसरी शती ई०

मे गुजरात मे था ही किन्तु ऋचीक वश की सत्ता छठी शती ई० मे निश्चित रूप से नही रह गयी थी। वाकाटक तथा गुप्त साम्राज्य के उदय के साथ इन वशो की सत्ता विलीन हो गयी। इतिहास के इन सत्यो को दखते हुए छठी शती ई० मे 'दशकुमार-चरित' की रचना हुई यह नही कहा जा सकता इसकी रचना का समय और पीछे हो जाएगा। बाणभट्ट की कादम्बरी' और दण्डी के 'दशकुमार चरित' म भारतीय समाज एव द्वीपान्तर वाणिज्य की अत्यन्त विभिन्न स्थिति के चित्रण होन स इस बात का ही सकेत मिलता है कि दशकुमार चरित' की रचना 'कादम्बरी से एक युग पूर्व हुई होगी। दशकुमारचरित' का भारतीय समाज द्यूत, मद्यपान वेश्या सग अथापहरण चोरी आदि नाना व्यसनो स आक्रान्त है कादम्बरी के युग का समाज बहुत कुछ आध्यात्मिक विचारा के निकट स्थित है। 'दशकुमार चरित' म जिस द्वीपान्तर वाणिज्य के उल्लेख आय है, कादम्बरी या हषचरित दोनो मे इसका उल्लेख नही आता। इतिहास क्रम के इन तथ्यो स 'दशकुमार चरित' तथा 'कादम्बरी' दोनो के रचना काल का पूव एव पश्चात् होना तो स्वयसिद्ध है काल की यह दूरी कितनी है इसका पता समय के माप से चलेगा।

कुछ अन्य उल्लेख भी 'दशकुमारचरित' की रचना को पीछे ही ले जाते है। 'दशकुमार चरित म चरित भाग के प्रथम उच्छवास मे यह वणन किया गया है कि कथा के नायक राजवाहन का प्रतिद्वन्द्वी मालवेन्द्र का पुत्र दपसार पृथ्वी का साव-भौम राज्य प्राप्त करने के लिए कैलाश पवत पर तपस्या करता है। इक्ष्वाकुवशी वीरशेखर जो विद्याधर हो गया है, विद्याधर चक्रवर्ती वत्सराज नरवाहनदत्त से अपन पिता के विरुद्ध सहायता प्राप्त करन मे विफल होकर दपसार से मिलता है। अभिमानी दपसार ने उसे सहायता करने का वचन दिया और सहायता के बदले वीरशेखर न अपनी बहन अवन्तिसुन्दरी का परिणय दपसार से करने का वाक् दान दिया। कथा के ये प्रसग हमे गुणाढ्य की बहत्कथा की ओर ले जाते हैं, क्योकि विद्याधर चक्रवर्ती नरवाहनदत्त बृहत्कथा का नायक है। चरित भाग के उक्त सन्दभ क अनुसार नरवाहनदत्त उस समय विद्यमान है जब दशकुमार चरित के घटनाक्रम घटित हो रहे है। दपसार कैलाश पवत पर तपस्या करत हुए मालवा और अवन्ती के लिए अपन निर्देश भेजता है तपस्या छोडकर अवन्तिसुन्दरी के भवन म छद्म रूप स प्रवेश करता है राजवाहन की गोद म सोयी अवन्तिसुन्दरी को देखकर क्रुद्ध होकर राजवाहन के पैर चाँदी की जजीर से बाँध देता है। यह समस्त एन्द्रजालिक घटनाक्रम दशकुमार चरित' की रचना मे बहत्कथा' के प्रत्यक्ष प्रभाव का साक्षी है। तथा दूसरी ओर रचनाकार ने अन्य समसामयिक सामाजिक परि-स्थितियो के जो चित्र दिय है जैसे विन्ध्याटवी मे लुटेरो का जीवन यतीत करने वाला मातग ब्राह्मण मरीचि मुनि का ठगनवाली वश्या काममजरी, वेश्या की दूती का काम करनेवाली शाक्य विदभ भिक्षुणी नरश अनन्तवर्मा को अनाचार का

उपदश दनेवाला खल विहारभद्र आदि प्रसग उसकी यथाय दष्टि तथा समाज के सत्य को उधारकर देखन की प्रवृत्ति का परिचय देत हैं। अत 'दशकुमार चरित' की रचना उस युग स धि मे हुई जहाँ अलक्ष्य पौराणिक विश्वासा के साथ समाज का नगा स य सामन आ रहा था। तथ्य यह भी है कि कथा के नायक राजवाहन के काल म विद्याधर चक्रवर्ती नरवाहनदत्त के पथ्वी पर विद्यमान होने की बात कहना, इसके कथाकार को गुणाढय की 'वहत्कथा' का अत्यत परिचित पाठक सूचित करता है। जस वह स्वत त्र होकर अपने कथा वि यास की कल्पना नहीं कर रहा है और उसके युग तथा समाज के मानस मे 'वहत्कथा' के प्रसग बसे हुए हैं। इसीलिए कथा प्रसगो मे उसने कई अनहोनी कल्पनाओ का चित्र दिया है, जो या तो वहत्कथा म है, या द तकथाआ मे आत हैं, जैसे—वद्धा नवजात शिशु को लकर जगन म जसे ही आगे बढी सामन मतवाला हाथी आ गया वद्धा बालक को छाडकर भाग गयी, बालक को नय पल्लव का ग्रास समझकर हाथी न सूड मे उठाया कि तब तक भयानक गजना करता हुआ सिंह हाथी पर झपट पडा हाथी न बालक का सूड स उछालकर फेंक दिया वक्ष की शाखा पर बठ हुए ब दर न उसे फल समझकर हाथो मे लोक लिया, देखा कि यह फल नहीं है तो उसे एक चौडी शाखा पर सुरक्षित रखकर दूसरी ओर निकल गया, तब तक सिंह भी हाथी को मारकर चला गया। बालक अपनी आयु से बच गया। (पूवपीठिका प्रथम उच्छवास, पुष्पोद्भव की ज मकथा) ऐसा लगता है कि दशकुमार चरित' का रचयिता समाज के यथाथ दशन म जितनी तीक्ष्ण मति रखता है कथा वि यास म वह उतना कुशल नहीं है, कथा वि यास के लिए वह वहत्कथा का ऋणी है। अत कथाकार दण्डी का समय बाणभट्ट से एक युग पूव म ही है।

कथा-वि यास मे वर्णित भूगोल

दशकुमार चरित का मुख्य नायक राजवाहन मगध देश के राजा राजहस का पुत्र है। पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) उसकी राजधानी है। मालवे द्रमानसार राजहस का शत्रु है उसका पुत्र दपसार उसके पुत्र राजवाहन का प्रतिद्वन्द्वी होकर आता है। अव ती की अर्वा तसु दरी का परिणय राजवाहन से होता है। कथा वि यास म मुख्य रूप स पुष्पपुर अग देश की राजधानी चम्पा, श्रावस्ती, काशी, सुह्म प्रदेश का दामलिप्त नगर और कलिग प्रदश से लेकर पश्चिम मे उज्जयिनी, सौराष्ट्र विदभ प्रदेश नमदा के तट के दूसरे राज्य, अव ती मालवा, त्रिगत एव इनके बीच म पूर्वी से पश्चिमी समुद्र तक फैले वि ध्य का तार के स्थलो का उल्लख हाता है। इन स्थलो के प्रसग म प्रात , स ध्या निशीथ—इन ऋतुआ के ललित वणन जहाँ तहाँ किये गय हैं। गगानदी का उल्लख कई बार आया है।

7

दशकुमार चरित कथा-सक्षेप

पूर्व पीठिका

'दशकुमारचरित' के तीन भाग है पूवपीठिका, चरित भाग तथा उत्तर पीठिका। पूवपीठिका म पाँच और चरित भाग म आठ उच्छवास है उत्तरपीठिका उपसहार मात्र है, पूवपीठिका वस्तुत कथामुख के रूप म है। चरित भाग ही आख्यान का मुख्य भाग है। उच्छ्वासो के अनुसार कथा का सक्षप इस प्रकार है—

प्रथम उच्छवास (पूवपीठिका)

पुष्पपुर के राजा राजहस और रानी वसुमती का वणन। यहाँ कवि न वसुमती के सौंदय का सक्षेप म अनोखा वणन किया है, जिसम छवि साकार हो उठती है। आग कवि कथा क्रम को त्वरा के साथ आगे बढाता है—राजहस द्वारा मालवनरश मानसार की पराजय। राजहस की रानी वसुमती का गभधारण। मानसार द्वारा महाकालेश्वर की आराधना कर शत्रुविजयी तलवार की प्राप्ति। पुष्पपुर पर चढाई, राजहस की पराजय। अमात्य परिजनो का विन्ध्यवन मे पलायन। युद्ध म सारथी के मारे जाने पर रथ मे मूर्च्छित राजहस का लेकर घोडे जगल मे भाग जाते हैं। राजहस की प्राण रक्षा हो जाती है। वसुमती से राजवाहन का जन्म, इसके साथ ही चार अमात्यो को भी चार पुत्र उत्पन्न हुए—इनके नाम है—प्रमति, मित्रगुप्त मन्त्रगुप्त और विश्रुत। राजवाहन इन मन्त्रि पुत्रा के साथ क्रीडा और विनोद करने लगा।

मानसार से युद्ध मे पराजित होन पर राजहस के अमात्य तथा मित्र राज्यो के राजा सभी तितर बितर हो गये थे। द्वीपान्तर तक चले गय। ऐसा सयाग घटित होता है कि राजा राजहस के क्रमश पास भिन्न भिन्न लोग पाच बालका को ले आकर अर्पित करत हैं ये सभी बालक राजहस के अमात्या तथा मित्रा के ही पुत्र है। इन वालको के नाम हैं—उपहार वर्मा, अपहार वर्मा, पुष्पोदभव, अथपाल सोमदत्त। इनमे पुष्पोद्भव के पिता अमात्य रत्नोद्भव न कालयवन द्वीप म जाकर

विवाह किया था, जब वह पत्नी के साथ पुष्पपुर आ रहा था, नौका समुद्र के तरंगो के झंझावात म टूट गयी। पिता माता और पुत्र तीन जगह बिछुड़ गये, पर तीनो जीवित रहे।

राजवाहन के साथ इन सभी कुमारो की शिक्षा-दीक्षा की पूर्ण व्यवस्था राजा राजहंस ने की। उपनयन के बाद इन्होंने लिपि ज्ञान, धनुर्वेद तथा सभी विद्याओ एवं कलाओ का ज्ञान प्राप्त किया। इन्होंने द्यूत, कपटकला तथा चोरी आदि की भी पूरी प्रवीणता प्राप्त की। वाहनो का आरोहण एवं आयुधो का प्रयोग भली भाँति सीखा। राजहंस ने इन प्रगल्भ एवं सभी विद्याओ म प्रवीण कुमारो को देख कर अपने को शत्रुओ से अजेय समझा।

द्वितीय उच्छ्वास (पूर्वपीठिका)

मुनि वामदेव की सलाह से सभी कुमारो ने राजकुमार राजवाहन के साथ शुभ मुहूर्त म दिग्विजय के लिए अभियान किया। ये सभी विन्ध्य के महावन म प्रविष्ट हुए। वहाँ राजवाहन की भेंट एक भयानक आकृतिवाले मातंग ब्राह्मण से हुई। उनकी प्रार्थना पर आधी रात म राजवाहन अपने मित्रो को वन के आवास म ही छोड़कर उसकी सहायता करने चला गया। मातंग दण्डकवन म एक नदी तट पर शिवलिंग के पीछे पार्वती के चरण चिह्न के प्रस्तर के निकट गुप्त विवर म पाताल लोक मे जाना चाहता था, वहाँ पहुँचने के लिए वह राजवाहन को साथ ले गया। राजवाहन के साथी प्रातःकाल अपने नायक राजकुमार को न देखकर अत्यन्त व्याकुल हुए और फिर एक स्थान पर मिलने का निश्चय कर राजवाहन को खोजने विभिन्न दिशाओ मे निकल पड़े।

राजवाहन की सहायता से मातंग पाताल लोक मे असुरराज की कन्या कालिंदी से विवाह कर वहाँ का स्वामी बन गया। राजवाहन पाताल लोक म वापस लौटा, उसके पास कालिन्दी की दी हुई एक मणि थी, जिसके रखने से भूख प्यास नहीं लगती थी। अपने पूर्व स्थान पर आने पर वहाँ उसका कोई साथी न मिला। अब राजवाहन पृथ्वीतल पर इधर उधर घूमने लगा। इस बीच वर्षों का अन्तराल बीता होगा। एक दिन वह विशालापुरी के उद्यान मे विश्राम करने की व्यवस्था म था कि देखा, पालकी मे बैठी रमणी के साथ सभ्रान्त लोगो से घिरा एक पुरुष उधर ही आ रहा है। पुरुष ने राजवाहन को पहचाना और पालकी से उतर कर उनके चरणो मे प्रणाम किया। राजवाहन ने देखा कि यह उसका साथी सोमदत्त है उन्होंने उसे छाती से लगा लिया। उसका समाचार पूछने लगा, साथ ही रमणी के प्रति जिज्ञासा प्रकट की। सोमदत्त ने कहना आरम्भ किया। कथाकार ने इस प्रकार कथा को आगे बढ़ाने का क्रम प्रस्तुत किया है।

तृतीय उच्छ्वास (पूर्वपीठिका)

सोमदत्त ने बताया कि आप से वियुक्त होकर आपकी खोज में ही भटकते हुए एक दिन एक वन में पहुँचा, वहां मुझे एक बहुमूल्य मणि प्राप्त हुई। तदनन्तर एक गरीब ब्राह्मण दिखायी पड़ा जो अपने मातहीन पुत्रों के पालन के लिए भिक्षाटन करता था और शिवालय में रहता था। उससे पता चला कि इस देश के अधिपति वीरकेतु की कन्या का परिणय करने के लिए जो अत्यन्त सुंदरी है लाट देश के राजा मत्तकाल ने चढ़ाई की है उसी की सेना का पड़ाव यहाँ पड़ा है। मैंने वह मणि उस गरीब ब्राह्मण को दे दी। थोड़ी देर में उस ब्राह्मण को दो राजपुरुष पकड़कर ले आये और उसके दिखाने पर मुझे बाँध लिया, उसको छोड़ दिया। वह मणि लाट देश के राजा की थी।

बन्दी बनाये जाने के बाद सोमदत्त ने अपने बुद्धि कौशल और पराक्रम से लाट देश के राजा मत्तकाल को ही मार डाला, तदनन्तर वीरकेतु की पुत्री का विवाह सोमदत्त के साथ हुआ। वही रमणी पालकी में थी। राजवाहन ने सोमदत्त के पराक्रम की प्रशंसा की। उसी समय वहां पुष्पोद्भव आ पहुँचा।

चतुर्थ उच्छ्वास (पूर्व पीठिका)

पुष्पोद्भव ने अपने भ्रमण की कहानी सुनायी जिसका सारांश यह था— राजवाहन की खोज में घूमते हुए एक दिन जब वह प्रचण्ड धूप से व्याकुल होकर पर्वत के पास घने वृक्ष की छाया में विश्राम कर रहा था, तब प्राण विसर्जित करने को तैयार एक पुरुष से उसकी भेंट हुई, जिसे उसने सान्त्वना दी तथा उससे परिचय प्राप्त किया। इस आकस्मिक परिचय से वह बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि वे उसके पिता थे। पिता को वहीं बैठाकर वह एक रोती हुई स्त्री का परिचय प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ा, जो पति और पुत्र के वियोग में अग्नि की ज्वाला में जलने जा रही थी। 16 वर्षों से इस वियोग में वह घूम रही थी। वह पुष्पोद्भव की माँ थी। पिता माता और पुत्र का मिलन हो गया। पिता माता को एक मुनि की कुटी में निवास कराकर वह स्वयं आगे बढ़ा। विन्ध्याचल के एक प्राचीन ध्वंसावशेष नगर में उसे एक खजाना प्राप्त हो गया तथा असंख्य दीनार की स्वर्णमुद्राएँ खोदकर गाड़ियों पर लाद कर ले आया। उसने वणिक्पुत्र चन्द्रपाल से मित्रता कर ली और उसके साथ उज्जयिनी चला आया। बाद में माता पिता को भी वहीं ले आया।

उज्जयिनी में तरुणी बालचन्द्रिका से पुष्पोद्भव का प्रेम हो गया। मालवनरेश मानसार का पुत्र दर्पसार त्रिभुवन का साम्राज्य प्राप्त करने के लिए कैलाश पर्वत पर तपस्या कर रहा था और राज्य की व्यवस्था का भार उसने अपने पिता की बहन

के दो पुत्र चण्डवर्मा और दारुवर्मा को सौंप रखा था। इनमे दारुवमा बड़ा अनाचारी था वह बालचन्द्रिका को बलात् ग्रहण करना चाहता था। पुष्पोद्भव ने बालचन्द्रिका के वध मे दारुवर्मा से मिलकर उसको मार डाला। फिर उसने बालचन्द्रिका स विधिवत् परिणय किया।

पुष्पोदभव की कथा सुनकर राजवाहन उसक साथ पृथ्वी के स्वग अवन्तिका पुरी (उज्जयिनी) मे गया। वहाँ पुष्पादभव न अपने मित्रा स उसका परिचय दिया। नगर म राजवाहन की प्रसिद्धि कला प्रवीण ब्राह्मण के रूप मे की गयी। नगरवासिया स उसका सही परिचय गुप्त रखा गया।

पञ्चम उच्छ्वास (पूव पीठिका)

पाँचवें उच्छवास मे राजवाहन से मालवनरेश मानसार की पुत्री अवन्तिसुन्दरी के परिणय होने की कहानी है। यह परिणय एक एन्द्रजालिक (जादूगर) क चमत्कार स सम्पन्न हाता है।

उच्छवास का आरम्भ वसन्तागम के ललित वणन स हाता है। पुष्पादभव की पत्नी बालचन्द्रिका मानसार की पुत्री अवन्तिसुन्दरी की सहचरी है।

वसन्तागम म विहार की इच्छा से अवन्तिसुन्दरी सहचरी बालचन्द्रिका क साथ नगर के समीप उपवन म गयी हुई थी जहाँ उसने कामदेव का पूजन किया और सखिया के साथ क्रीडा विनोद करने लगी। राजवाहन भी पुष्पोद्भव के साथ उसी उपवन मे घूमने पहुँच गया। राजवाहन के वहा पहुचन पर ऐसा लगा कि इस वसन्त ऋतु म इस उपवन म स्वय कामदव (राजवाहन) अपनी पत्नी रति (अवन्तिसुन्दरी) को देखने आ गया है।

यहाँ कवि ने अवन्तिसुन्दरी के सौन्दय का सुविस्तत वणन किया है। सौन्दय की अभिव्यक्ति म परम्परागत उपमान अधिक हैं पर कहीं-कहीं कवि की अपनी अनोखी दृष्टि है जैस बाणायमानपुष्पलावण्येन शुचिस्मितम्'। (अर्थात् जो फूल काम के बाण बन रह थे उन फूलो की ही सुन्दरता मे उदभासित उसकी अछूती पवित्र मुसकान थी)

राजवाहन और अवन्तिसुन्दरी परस्पर एक-दूसर को दखकर रीझ गय। तथा काम भाव की प्रबल पीडा न उन्हे आक्रान्त कर लिया। सामान्य रूप स दोनो की बातचीत भी हुई। अवन्तिसुन्दरी ने बालचन्द्रिका को एक राजहस को पकडन का निर्देश दिया। राजवाहन न इस काय से उसे मना किया। इस सन्दभ म उसन एक राजहस द्वारा राजा शाम्ब को शाप दिये जाने की कथा सुनायी। लगभग उसी समय अवन्तिसुन्दरी की राजमाता पुत्री का क्रीडा विनोद दखन के लिए उपवन म आ गयी, तत्काल अवन्तिसुन्दरी न राजवाहन को पुष्पोदभाव के साथ वक्षो के

निकुज में छिप जाने को कहा। अपनी माता के साथ वह राजभवन में चली गयी। राजवाहन भी वहाँ से चला आया। दोनों की वियोगजन्य कामपीडा बढ़ने लगी। राजकुमारी बहुत व्यथित हुई उसने बालचन्द्रिका के हाथ से राजवाहन को प्रेम पत्र भी भेजा। राजवाहन उस पत्र को प्राप्त कर प्रसन्न हुआ और वियोग से व्यथित भी हुआ और राजकुमारी की याद में उसी उपवन में मन बहलाने पहुँच गया। जब वह टहल रहा था उसी समय रंगीन वस्त्र पहने मणियों के कुडल से मडित एक ऐन्द्रजालिक ब्राह्मण वहाँ आया जिसके साथ मुण्डित शिर अन्य व्यक्ति भी था। उसने राजवाहन को आशीर्वाद दिया। राजवाहन ने उससे पूछा आप कौन हैं, किस विद्या में निपुण हैं। राजवाहन से उसका पूर्ण परिचय तथा घनिष्ठता हो गयी।

एक दिन उस ऐन्द्रजालिक ने राजा मानसार को अपने इन्द्रजाल के विविध कौतुक दिखाने आरम्भ किये। उसके विस्मय भरे कार्यों से दर्शक मुग्ध थे। अंतिम कार्यक्रम में उसने घोषणा की कि मैं अब राजा की राजकुमारी के समान एक युवती उत्पन्न कर उसका विवाह उस ही गुण शीलवाले एक राजकुमार से कराने जा रहा हूँ। ऐन्द्रजालिक की घोषणा के अनुसार सभी उसे इन्द्रजाल (जादू) की ही करामात समझ रहे थे किन्तु वहाँ सचमुच पूर्वनियोजित अभिसंधि के अनुसार अवन्तिसुन्दरी और राजवाहन का विवाह वेदमन्त्रों की ध्वनि में अग्नि को साक्षी बनाकर हो गया। कार्यक्रम समाप्त हुआ तथा ऐन्द्रजालिक के मायावी मनुष्य धीरे धीरे गायब हो गये। राजवाहन भी मायावी पुरुष के रूप में राजकुमारी अवन्ति सुन्दरी के अन्तःपुर में चला गया। किसी को पता न चला। राजा मानसार ने ऐन्द्रजालिक के कार्यों की प्रशंसा की तथा प्रचुर धन पुरस्कार के रूप में देकर उसे विदा किया।

राजवाहन तथा अवन्तिसुन्दरी दोनों अन्तःपुर के एकान्त में अपनी मीठी बातों में रात्रि के मिलन का सुख लूटने लगे।

चरित भाग

प्रथम उच्छ्वास

चरितभाग का प्रथम उच्छ्वास सम्पूर्ण कथावस्तु का निर्वहण स्थल है। राजवाहन के पाताल लोक चले जाने पर सभी कुमार उसकी खोज में निकल पड़े थे। राजवाहन ने भी वापस लौटने पर जब किसी को न देखा तो चिंतित होकर उनकी खोज में लग गया। अब तक सोमदत्त तथा पुष्पोद्भव, दो साथी कुमार उसको मिल चुके थे। शेष का पता नहीं था। राजवाहन का परिणय मानसार

की राजपुत्री अवन्तिसुन्दरी से हो चुका था। जिसके फलस्वरूप तथा अन्य कारणों से मालवेश्वर चण्डवर्मा ने चम्पानरेश सिंहवर्मा पर आक्रमण कर दिया, चण्डवर्मा सिंहवर्मा की राजकुमारी से विवाह करना चाहता था, यह प्रस्ताव सिंहवर्मा को स्वीकार नहीं था। राजवाहन भी चण्डवर्मा का बन्दी बनकर उन्हीं अवस्था में युद्ध के समय चम्पा नगर में विद्यमान था। राजकुमार राजवाहन के साथी अपहार वर्मा के कौशल से चण्डवर्मा मार डाला गया। सिंहवर्मा की सहायता के लिए दूसरे राजा भी चम्पा पहुँचे थे उसमें राजवाहन के साथी कुमार उपहार वर्मा, अर्थपाल प्रमति मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त तथा विश्रुत थे। विजय के बाद सभी का सम्मेलन उल्लास के वातावरण में होता है ये सभी राजकुमार अपने बीच राजवाहन को प्राप्त कर बड़े प्रसन्न होते हैं और अपने स्वामी राजकुमार का अभिवादन करते हैं। वे दिग्विजय के लिए निकले थे और चम्पा के युद्ध में हुई जीत से उनकी वह दिग्विजय पूरी हो जाती है।

कथावस्तु के विन्यास की दृष्टि से इस उच्छ्वास में कथा का समापन हो जाता है और कुछ कहने को शेष नहीं रह जाता। आगे राजवाहन के आग्रह पर प्रत्येक कुमार अपनी यात्रा का वृत्तान्त तथा किसी न किसी राजकुमारी से अपने परिणय का कौतुक पूर्ण आख्यान सुनाता है। ये आख्यान हैं तो बहुत ललित और आकर्षक और उनमें कथारस की धारा कल-कल करके बह रही है किन्तु ये आख्यान कथा-वस्तु के सहज विन्यास से स्वतन्त्र प्रतीत होते हैं। बृहत्कथा की शैली पर इन आख्यानों का विस्तार किया गया है।

इस उच्छ्वास की कहानी का संक्षेप यह है—

उच्छ्वास का आरम्भ कवि ने अवन्तिसुन्दरी और राजवाहन के परिरम्भ-विलास से किया है। लघु होते हुए भी उसमें शृंगार रस की लहरें उठ रही हैं विशेष रूप से वाक्य की समाप्ति पर जहाँ अवन्तिसुन्दरी प्रेम से कातर होकर राजवाहन के अधरोष्ठ का गाढ़ चुम्बन ले लेती है। इस वर्णन में नये उपमानों की नूतनता कवि की प्रतिभा का प्रमाण देती है। ये नये उपमान हैं—अवन्तिसुन्दरी की, प्रेम से रक्तिम आँखें द्रोणपर्णी की कली के समान हैं पुष्पों से ग्रथित उसका केशकलाप मोर पंख के समान है राजवाहन के अधर कदम्ब के कुड्मल (पुष्प की कली) जैसे हैं।

विलास से थककर अवन्तिसुन्दरी राजवाहन की गोद में सोयी हुई थी, राजवाहन भी सो गया था। इतने में दर्पसार कैलाश पर्वत से आकर निरस्करिणी विद्या से वहाँ पहुँचा और चाँदी की जंजीर से राजवाहन के दोनों पैर बाँध दिये। जब दोनों जगे राजवाहन की यह दशा देखकर अवन्तिसुन्दरी चीत्कार करने लगी। सारे अन्तःपुर में शोर मच गया। चण्डवर्मा को समाचार मिला वह अन्तःपुर में राज-वाहन को देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ उसे बन्दी बना लिया। मालवेन्द्र मानसार

और रानी अपन जामाता राजवाहन को हृदय से चाहत थे अत उनके हस्तक्षेप के कारण चण्डवर्मा ने राजवाहन के प्राण न लेकर केवल बन्दी बनाकर रखा।

चण्डवर्मा ने शीघ्र ही अगराज सिंहवर्मा की चम्पानगरी पर आक्रमण किया। वह सिंहवर्मा की पुत्री अम्बालिका को ब्याहना चाहता था। सिंहवर्मा न अपनी सहायता के लिए मित्र राजाओ का बुला रखा था, पर उनके पहुँचन के पहले ही चण्डवर्मा न सिंहवर्मा की सारी सना को नष्ट कर दिया और अन्त म सिंहवर्मा को बन्दी बना लिया। सिंहवर्मा का बन्दी बनाने के बाद उसने ज्योतिषियो को बुलाया और उनस रात्रि मे ही विवाह का मुहूर्त निश्चित किया।[1]

विवाह क मगलाचार समाप्त हो रह थे कि कैलास पवत म चण्डवर्मा के पास एणजघ नामक सेवक दपसार का यह सन्देश लेकर आया कि पिता (मानसार) की परवाह न कर राजवाहन का वध कर दो। चण्डवर्मा न आदश दिया कि प्रात - काल राजद्वार पर राजवाहन को उपस्थित किया जाय। रक्षको स घिरा राजवाहन वहाँ लाया गया तथा राजवाहन की हत्या के लिए चन्द्रपोत नामक मतवाला हाथी राजद्वार पर खडा किया गया।

इस बीच कौतुकपूण दूसरी घटना घट गयी थी। जिस चाँदी की जजीर से राज-वाहन के पैर बाधे गये थ, अचानक वह सुरतमजरी अप्सरा हो गयी। उसन अनेन शाप तथा उद्धार की पूरी कहानी सुनायी। राजवाहन ने उसस अपनी प्रिया अवन्ति-सुन्दरी के पास जाकर कुशल समाचार सुनाने और धीरज बँधान क लिए कहा।

प्रात काल राजवाहन की हत्या किय जान की तैयारी पूरी की जा चुकी थी। पर अभी अम्बालिका के साथ चण्डवर्मा की विवाह विधि शेष रह गयी थी। सहसा कोलाहल मच गया, उसन जसे ही अम्बालिका का पाणिग्रहण करने को हाथ बढाया किसी न पहुचकर उसका ही हाथ तेजी स पकडकर खीच लिया और कटार स उसको मार डाला, दुष्कर काय करनेवाले उस तस्कर वीर न राजभवन के भीतर सकडा व्यक्तियो का वध कर दिया।

यह शोर सुनकर राजवाहन न राजद्वार पर खडे मतवाले हाथी पर महावत को हटाकर स्वय सवारी की और हाथी का प्रबल वेग स हाकता हुआ राजभवन के भीतर प्रवेश किया। उसने घोषणा की कि मैं उस महावीर का दशन करना चाहता हूँ जिसन क्षण भर म असभावित दुष्कर काय कर डाला है, वह सामने आये, मैं उस अभय दान दे रहा हूँ। जब वह वीर सामन आया तो वह अपहारवर्मा था, राजवाहन ने उसे पहचान लिया। और दोना गले मिले।

राजवाहन से मिलने के समय अपहारवर्मा न अपन शस्त्रास्त्रो का एक आर

1 अजीगणन्त्र गणक सघ (ज्योतिषिया ने मुहूर्त का गणना की) वस्तुत यहाँ गणक स लग्न और मुहूत बतानेवाले सामान्य ज्योतिषी अभीष्ट है जिनकी सख्या अनक हो सकती थी, इसलिए गणक सघ का प्रयोग है।

रख दिया। उनके नाम गिनाय गय हैं—धनुष चक्र क्षणप, क्षपण, प्रास, पट्टिश मुसल तोमर आदि। इसी समय एक दूसरा गौराग पुरुष, जिसके केश नील और आँख काली थी, राजवाहन से आकर मिला। अपहारवर्मा ने उसका परिचय दिया वह धनमित्र था उसन सिंहवर्मा की सहायता के लिए मित्र राजाओं की सना इकट्ठी की थी। अपहारवर्मा न राजवाहन को हाथी स उतरन के लिए सहारा दिया। आगे गगा नदी की चमकती रेशमी बालू थी अपहारवमा न बालू का चबूतरा बनाकर राजवाहन को उस पर सिंहासनारूढ किया। राजवाहन का कुछ दर बाद उपहार वर्मा अर्थपाल प्रमति मित्रगुप्त मन्त्रगुप्त, विश्रुत कुमार साथियों मिथिलानरेश प्रहारवर्मा काशीपति कामपाल और चम्पेश्वर सिंहवर्मा क साथ आकर धनमित्र न प्रणाम किया। यह राजवाहन की दिग्विजय थी।

सभी के एक साथ मिलन से महान प्रसन्नता का वातावरण छा गया। राजवाहन ने अपना तथा सोमदत्त और पुष्पोद्भव का वृत्तान्त सभी को सुनाया एव सभी मित्रों स अपना वृत्तान्त सुनान का प्रस्ताव रखा। सवप्रथम अपहारवर्मा ने अपने भ्रमण की कहानी सुनानी आरम्भ की।

द्वितीय उच्छ्वास—चम्पानगरी मे अपहारवर्मा

सभी कुमारो म अपहारवर्मा का आख्यान लम्बा है तथा उसके चरित म विविध प्रकार के प्रसग हैं। अपहारवर्मा द्यूतक्रीडा चोरी कूटनीति कपट-जाल आदि म प्रवीणता है ही, वीर साहसी और प्रत्युत्पन्नमति भी है।

राजवाहन स बिछुडन के बाद वह गगा नदी के तट पर स्थित अग देश पहुचा और फिर उसकी राजधानी चम्पा गया। उसन सुना कि यहाँ एक त्रिकालदर्शी मरीचि मुनि रहत है अत राजवाहन कहाँ होंगे, यह पूछने के लिए उनके पास पहुँचा। मरीचि मुनि से भेंट ता हुई पर उन्होंने बताया कि सम्प्रति मेरा सारा तप नष्ट हा गया है काममजरी वेश्या ने मुझ ठग लिया है, कुछ तप सचित कर लू तो फिर आना बताऊगा। अपहारवर्मा को मरीचि मुनि ने वह सारा वृत्तान्त वदना के साथ सुनाया। अपहारवर्मा न रात्रि मुनि के आश्रम मे बिताई, प्रात काल नगर की ओर चला। यहा पर कथाकार ने मरीचि मुनि तथा काममजरी के प्रसग म तात्कालिक वेश्या जीवन उसक व्यवहार तथा अधिकारो का ब्योरा दिया ह। काममजरी वैराग्य का बहाना लकर मरीचि मुनि के आश्रम म रहन आयी थी। उसके पश्चात उसकी माता माधवसेना रोती हुई उस बुलान आयी तथा मुनि स कहा कि इस आप अपन यहाँ रहन की अनुमति न दें। यदि यह आपके यहाँ रह जाएगी तो हमार परिवार का जीवन-यापन कैसे होगा। उसी सदर्भ म वह वणन करती है कि प्रत्येक वेश्या अपनी पुत्री को योग्य बनाने के लिए कैसे लालन-पालन करती है। साथ ही यदि मेरी कन्या किसी गुणी, किन्तु द्रव्यहीन युवक पर रीझ

जाए तो उसका शुल्क हम उसके परिवार तथा उसके सम्बन्धियो से भी वसूल कर सकते हैं यह अधिकार हमे राज्य की ओर से प्राप्त है।

उसने माग मे एक क्षपणक-विहार के बाहर अशोक वन मे बैठे किसी क्षपणक को रोते हुए देखा। वह पीडा से दुबल और कुरूपो मे अग्रणी था। पूछने पर पता चला कि यह वसुपालित नामक वैश्य है उसका दूसरा नाम विरूपक भी है। यह बड धन का स्वामी था। अपहारवर्मा के पूछने पर उसने बताया कि काममजरी वेश्या ने बनावटी अनुराग दिखाकर उसका सब कुछ ठग लिया और उसे कौपीन धारी बना दिया है (मल्लमल्लकशेष कृत)। अपहारवर्मा उसका वृत्तान्त सुनकर द्रवीभूत हुआ। काममजरी ने मरीचि मुनि को भी ठगा था। उसने उस क्षपणक से कहा, कुछ काल तक धैय रखो, मैं ऐसा उपाय करूँगा जिससे वह वश्या तुम्हारे धन को लौटा दे।

अपहारवर्मा ने नगर मे प्रवेश किया तो पता चला कि यह नगर लोभी धनिको से भरा है। सवप्रथम उसने द्यूतसभा मे प्रवेश किया और जुआरियो की सगति की। वहाँ उसने सोलह हजार दीनार (स्वणमुद्राएँ) जीत। जीत हुए धन का आधा द्यूत-सभाध्यक्ष और सभ्यों मे बाँट दिया और आधा स्वय लेकर चल पडा। द्यूताध्यक्ष (सभिक) के अनुरोध पर उसी के घर जाकर भोजन किया। जिसकी प्ररणा से अपहारवर्मा ने द्यूतसभा मे प्रवेश किया और जिसको उसने अपने बल शील और कम का परिचय दिया था वह उसका अत्यन्त विश्वस्त विमदक नामक मित्र था। रात्रि मे अपहारवर्मा ने चोरी करने का निश्चय किया। कमर मे तेज तलवार बाँधी और चोरी के निमित्त ये उपकरण साथ मे लिये—सेंध लगाने के लिए सपमुख की शवरी (कावली), सडसी काष्ठ का पुरुषकपाल, योगचूण (जिसके डाल देने पर गाढ निद्रा आ जाती है) योगवर्तिका (जिसके द्वारा धन का अनुमान किया जाता है) मानसूत्र (सेंध नापने के लिए), ककटक (केकडे के आकार का यन्त्र विशेष) रस्सी, दीपपात्र, भ्रमर करण्डक (घर मे जलते दीपक को बुझाने के लिए भौंरो से भरी पेटी)। उसने एक लोभी धनी के घर मे सेंध लगाकर बहुमूल्य करधनी की चोरी की।

चोरी करके जब वह चला, वहाँ बादलो के कारण घना अन्धकार था। उस घने अधकार मे उसे बिजली की ज्योति के समान आभूषणो से सुसज्जित एक युवती दिखायी पडी। जैसे वह नगरदेवी थी, जो नगर मे चोरी के कारण रुष्ट होकर चली जा रही थी। अपहारवर्मा ने उसका पूण परिचय प्राप्त किया। वह सेठ कुबेरदत्त की पुत्री थी, उसका विवाह उदारक नामक युवक से निश्चित था, उसके निधन हो जाने से पिता उसका विवाह साथवाह अर्थपति से करना चाहता है। किन्तु यह युवती अपने पूव वर गुणी उदारक के पास रात्रि मे आभूषणो का भाण्ड साथ मे लिये जा रही थी। उसकी यह कथा सुनकर अपहारवर्मा दयालु हुआ,

उसे उदारक के पास पहुँचाने ले चला। रास्ते म साठी और तलवार लिये नागरिकों का वहा युद्ध हो रहा था। अपहारवर्मा ने सपदश का बहाना कर अपने को मनवत् प्रदर्शित कर उस युवती के पति बनकर उससे रक्षा की। फिर उस युवती को लेकर उदारक के पास पहुँचा कहा— मैं एक चोर हूँ, इस युवती का मन तुमम लगा हुआ था रात्रि म अकेले आ रही थी इसका मैंने तुम्हारे पास पहुचा दिया और य हैं इसके गहने।" उदारक लज्जा हुए और घबराहट म भर गया। उसने अपहार वर्मा की बड़ी प्रशसा की और पैरो पर गिर पड़ा।

अपहारवर्मा ने फिर दूसरा अनोखा काम किया। उदारक को साथ लेकर उस युवती को अगुआ बनाकर कुबेरदत्त के घर से भी चोरी की। दोनो एक मतवाले हाथी पर सवार हुए और उस हाथी से अथपति का घर ढहा दिया। फिर निर्जन म *वृक्ष की शाखा पकड़कर दोनो हाथी से उतर गये। उदारक का असली नाम* धनमित्र था। वह अपहारवर्मा का अत्यन्त विश्वस्त साथी बन गया। आगे उसका सहायक बनाकर उसने चम्पा के धनिकों का धन हरण करने की योजनाएँ सफल की हैं उसने द्यूतसभा के विमदक को भी अपनी योजनाओ म साथ लिया।

अब उसने एक नया मायाजाल रचा। धनमित्र को उसका माध्यम बनाया। अपने पास चमरत्नभस्त्रिका होने का प्रचार किया। यह चमरत्नभस्त्रिका विधिवत् पूजा और ध्यान करने पर प्रातःकाल स्वणमुद्राओ स भरी रहती है। इसके लोभ म काममजरी और अथपति दोनो बुरी तरह से फँस गए। अपहारवर्मा ने विमदक को अथपति के यहाँ नौकरी करने की सलाह दे दी जो उसके गुप्तचर का काम करता रहा। उसी विमदक की सहायता स अथपति की चमरत्न भस्त्रिका की चोरी लग गयी, जिसके कारण उसे प्राणदड का आदेश हुआ, पर धनमित्र ने राजा से प्रार्थना कर चन्द्रगुप्त मौर्य के विधान का प्रमाण देकर उसको प्राणदड से बचा लिया।

इसी बीच दूसरी घटना यह घटी कि एक दिन काममजरी की छोटी बहन रागमजरी का नृत्यगान नागरिकों की ओर से आयोजित था, उसम अपहारवर्मा भी उपस्थित था। रागमजरी अपहारवर्मा को देखते ही उस पर निछावर हो गयी। स्वत अपहारवर्मा भी उस पर रीझ उठा था। यहा पर पुरानी उत्प्रेक्षा को कवि ने फिर दोहराया है। अपहारवर्मा कहता है कि "नगर म निरन्तर चोरी की घटनाएँ करने के कारण मुझको उस रागमजरी ने रुष्ट हुई नगरदेवी के समान अपने विलासमय कटाक्षों की माला रूपी जजीरो से जो नीलकमल की पखुडिया जैसी श्यामल थी बाँधकर बन्दी बना लिया।"

रागमजरी का प्रणयी बनने से अपहारवर्मा को अपने काय क्षेत्र म सुविधा और विस्तार मिला। वह धनिकों के यहाँ से प्रचुर धन चोरी कर रागमजरी को देता था जिसस उसकी माता माधवसेना नाराज न हो। अपहारवर्मा के कौशल से चम्पा नगरी के सारे लोभी धनिकों का धन अपहरण हो गया, और वे अपहारवर्मा

के कृपा पात्रों के यहाँ धन की याचना करने जाने लगे। लेकिन एक दिन अनचाही घटना घट गयी। अपहारवर्मा उसके बारे में कहता है कि क्या वह, अत्यन्त चतुर व्यक्ति भी भाग्य की लिखी रेखा को मिटाने में समर्थ नहीं हो सकता—'न ह्यलमतिनिपुणोऽपि पुरुषो नियतिलिखितां लेखामतिक्रमितुम्।' यह बात मुझ जैसे निपुण और पौरुषवान् व्यक्ति के सम्बन्ध में भी घट गयी। एक दिन मैंने प्रेम में डूबकर रागमंजरी का मान शान्त करने के लिए उसके जूठे मद्य का कई बार पान कर लिया और उन्माद में आ गया। उन्माद में आने पर अपनी उन करतूतों को बकने लगा, जो चोरी और कपट-जाल से किया करता था। रागमंजरी दुखित हो गयी हाथ जोड़ने लगी। पर मैं मत्त होकर बाहर निकल पड़ा। रागमंजरी ने अपनी शृगालिका नाम की दूती को मेरे पीछे लगा दिया। बाहर निकलने पर जो नगर रक्षक पुरुष मुझे पकड़ने आये उनसे युद्ध करके दो-तीन को मार दिया। मद्यपान से विह्वल होकर मैं जमीन पर गिर पड़ा और मेरी तलवार हाथ से छूट गयी। फिर नगर रक्षकों ने मुझे बाँध लिया।

यह आकस्मिक विपत्ति अपहारवर्मा पर आ गई। वह कारागार में बन्द हो गया। लेकिन कारागार में बन्द होने के पहले उसने दूती शृगालिका से उन उपायों को रचने का निर्देश दे दिया, जिनसे उसे छूटना था। ये उपाय व्यावहारिक तथा कपट पूर्वक झूठी भावना पैदा करने के थे। उनमें मुख्य उपाय यह था कि शृगालिका ने कारागाध्यक्ष कान्तक नामक व्यक्ति के मन में यह विश्वास पैदा कर दिया कि राजकुमारी अम्बालिका उसको चाहती है और उस राजा का जामाता बनकर इस राज्य का भोग करना है। यह विश्वास इस कपट से पैदा हुआ—शृगालिका ने अम्बालिका की मातलिका नामक धात्री को अपने विश्वास में लिया। एक दिन कान्तक राजभवन के आँगन में आया, उस समय राजकुमारी प्रासाद के ऊपर अपनी धात्री के साथ मनोहर बातें सुन रही थी धात्री ने राजकुमारी से कहा कि कर्ण कुण्डल अपने स्थान पर ठीक से धारण नहीं किया गया है गिरनेवाला है यह कहते हुए उसे ठीक करने के बहाने नीचे गिरा दिया फिर हँसती हुई हाथ में कुण्डल को उठाकर सुरत में लीन पारावतों को भय दिखाने के बहाने उस कुण्डल को आँगन में खड़े कान्तक के ऊपर फेंक दिया। कान्तक ऊपर देखकर मुस्कराया और कृतकृत्य हो गया। तदनन्तर शृगालिका कान्तक से मिली और उसे बताया कि राजकुमारी आपको चाहती है।

कान्तक के उक्त विश्वास के बाद सारी योजना अनुकूल हो गयी। शृगालिका ने ही कान्तक से बताया कि उस दिन जो व्यक्ति कारागार में बन्द हुआ है चतुर और निर्भीक चोर है। उससे सेंध लगवाकर आप रात्रि में राजकुमारी के अन्त पुर के भवन में पहुँच जाइए। कान्तक ने कहा, हाँ वह चोर तो दीवाल खोदने में सगर के पुत्रों के समान है। कान्तक ने शृगालिका को अपहारवर्मा से बातचीत करने के

लिए नियुक्त किया। अपहारवर्मा का शपथ लेन क लिए कहा गया कि वह इस रहस्य को कही प्रकट नही करेगा। पर वास्तविक और मन की बात यह थी कि सेंध खोद दन के बाद कान्तक अपहारवर्मा को मार दना चाहता था। शृगालिका न इस मन्तव्य को अपहारवर्मा से कह दिया था। अपहारवर्मा की बेडियाँ खोल दी गयी। उसन बाहर आकर भोजन, शरीर में अगराग आदि की सुविधा प्राप्त की। निश्चित किय गय स्थान पर सेंध लगायी। सेंध लगाने के बाद कान्तक उसको पकडकर फिर बन्दी बनाना चाहता था कि अपहारवर्मा ने उसकी छाती पर लात मारकर पटक दिया और कटार से उसका सिर काट लिया। तब उसने शृगालिका स क या अन्त पुर जान का माग पूछा और निश्चय किया कि वहाँ स कुछ चुराकर लौटना चाहिए।

अपहारवर्मा न कन्या-अन्त पुर म पहुँचकर वहाँ का अत्यन्त मनोहारी दृश्य देखा। रत्नप्रदीप का प्रकाश चमक रहा था। परिजनो के बीच अम्बालिका पलग पर सो रही थी पलग पर धवल बिछौना और आस्तरण था फूलो की पखुडियाँ पलग पर पडी थी। पलग के पाय हाथी दान के थे और रत्नो स जटित थ। इसक बाद सोयी हुई अम्बालिका के सौन्दर्य का मनमोहक वणन है जैसे गुल्फ भाग की सन्धि के अवयव कोमलता के साथ प्रकट हो रह थे दोनो जघाएँ सटी थी घुटन मुडे थे। नितम्ब के ऊपर शिथिल एक हाथ लता क समान पडा था। दूसरा हाथ सिरहान की ओर तिरछा मुडा था जिसकी उत्तान हथेली किसलय के समान लग रही थी। वह कटि के नीचे चीनांशुक रेशमी वस्त्र का अन्तरीय पहन थी। मणि कुण्डल की कान्ति स कान क समीप केशो की आभा सुनहली हो गयी थी। दीघ नि श्वास स उसके कठोर कुडमल जैसे वक्ष कम्पित हो रह थे, आदि।

अपहारवर्मा वहाँ कुछ चोरी करने गया था किन्तु राजकन्या की छवि को देखकर स्वय चुरा लिया गया। कुछ क्षण उस कन्या को देखता ही रहा। फिर खूटी से चिकनी लकडी की पटटी उतारी और मणियो के बन समुदगक स रँगन की वर्तिका लेकर उस पटटी पर सोयी हुई कन्या का चित्र बनाया और उसक चरणो म अपन को हाथ जोडे चित्रित किया तथा नीचे एक आर्या लिख दी—

त्वामयमाबद्धाञ्जलि दासजनस्तमिमथमथयत।
स्वपिहि मया सह सुरतव्यतिकरखिन्नव मा मवम॥

अर्थात यह सवक हाथ जोडकर इस लोभ के लिए प्राथना कर रहा है कि मरे साथ सुरत क्रीडा स थककर सोओ ऐसे मत सोओ।

इसके बाद सुवण की पिटारी स पान कपूर और खैर निकालकर उसन खाया और चून से पुती दीवाल पर ऐसी पीक थूकी की चक्रवाक क जोड चित्रित हो गय। फिर राजकन्या स चुपचाप अगूठी का विनिमय कर न चाहत हुए भी वह किसी प्रकार बाहर निकल सका।

कान्तक को मारने का अपराध एक दूसरे कैदी सिंहघोष को स्वीकार करने के लिए कह दिया। फिर रात्रि में ही घर आने को निकल पड़ा, शृगालिका उसके साथ थी। रास्ते में नगर रक्षकों ने उसे पकड़ लिया, तब शृगालिका उसकी माता बन गयी और यह पागल लड़का जो बन्धन छुड़ाकर भाग निकला है। इस युक्ति से वह नगर रक्षकों से बचकर निकल आया। वह रात्रि रागमंजरी के यहाँ बितायी। सवेरे धनमित्र से मिला।

प्रातःकाल अपहारवर्मा ऐश्वर्यवान मरीचि मुनि के पास गया, जिनके पास अब दिव्य दृष्टि आ गयी थी। उन्होंने कहा—राजवाहन के मिलन का समय आ गया है। कान्तक को मारने के कारण सिंहघोष को राजा ने काराध्यक्ष बना दिया। अपहारवर्मा उसी सुरंग मार्ग से राजकन्या के अन्तःपुर में उससे मिलने जाता रहा। शृगालिका से अपहारवर्मा का पूर्ण परिचय प्राप्तकर राजकुमारी अम्बालिका ने उसका हृदय से वरण कर लिया था।

अपहारवर्मा के इन कारनामों के हो चुकने के बाद चण्डवर्मा ने चम्पानगरी पर आक्रमण किया। सिंहवर्मा की सेना नष्ट करने के बाद चण्डवर्मा ने गणकों से अम्बालिका के साथ परिणय का मुहूर्त निकलवाया। जब विवाह होने को था तब अपहारवर्मा ने धनमित्र के घर में अम्बालिका से परिणय के निमित्त स्वयं मंगलसूत्र धारण कर लिया, तथा धनमित्र से कहा कि चण्डवर्मा से युद्ध करने के लिए मित्र राजाओं के साथ तुम तैयारी करते रहो, तब तक मैं इसका सिर काटता हूँ।

शीघ्र ही विवाह की मण्डप भूमि में छिपाकर कटार लिये हुए अपहारवर्मा मंगलपाठ करनेवाले ब्राह्मणों के बीच में पहुँचा और उन्हीं के साथ बैठ गया। चण्डवर्मा जैसे ही अम्बालिका का पाणिग्रहण करने जा रहा था वैसे ही अपहारवर्मा ने तेजी से उसका हाथ खींचकर छाती में कटार मारकर उसका वध कर दिया और स्वयं अम्बालिका को लेकर गर्भगृह में चला गया। इसके बाद राजवाहन की घोषणा पर कृतकृत्य होकर उसके पास पहुँचा।

राजवाहन अपहारवर्मा की कहानी सुनकर विस्मय में भर गया, उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की। इसके बाद उसने क्रमशः उपहारवर्मा और दूसरे कुमारों से अपना-अपना भ्रमण वृत्तान्त सुनाने को कहा।

शेष छह कुमारों के अपने-अपने वृत्तान्त भी अपहारवर्मा के ही देश, काल और क्रिया की समानता रखते हैं। सभी कुमार कूट जाल और साहस के साथ किसी राजकुमारी को ब्याहते हैं। उनमें साहस, बुद्धिबल और अनेक कलाओं की प्रवीणता तो है ही, चोरी, द्यूत और वेश्याओं की काम कला के भी पूर्ण जानकार हैं। आगे उनके भ्रमण वृत्तान्त का पूर्ण विवरण न देकर सारांश रूप में मुख्य घटनाओं का परिचय दिया जा रहा है।

तृतीय उच्छ्वास – मिथिलापुरी मे उपहार वर्मा

इस समय विदह्पुरी का राजा विकटवर्मा था। उसके पहल प्रहारवमा था। प्रहारवर्मा राजहस की सहायता म पुष्पपुर गया उसकी अनुपस्थिति म उसके बडे भाई सहारवमा क पत्र विकटवर्मा न राज्य का हस्तगत कर लिया। प्रहारवर्मा और उसकी रानी प्रियवदा दोना विकटवर्मा के बदी है। प्रहारवमा जब पुष्पपुर से लौट रहा था, अपन विरुद्ध यह षड्यत्र सुनकर भानजा की सहायता लेन के लिए जान लगा लेकिन माग म उस काल भीला न लूट लिया। आर उसका छाटा शिशु धात्री की गाद स छूट गया। उम भील उठा ले गय थ। वहा शिशु यह उपहारवर्मा है।

उपहारवमा न जैसे ही मिथिला नगर म प्रवेश किया बाहर की मठिका म एक वद्धा तापसी मिल गयी। वह उपहारवर्मा को दखकर रान लगी। रोन का कारण पूछने पर उसन सारी कहानी सुनायी और कहा प्रहारवर्मा का वह शिशु आज होता तो तुम्हारी तरह ही होता। उपहारवर्मा न उस आश्वस्त किया और फिर अपन पिता माता के उद्धार की बातें सोचन लगा।

विकटवमा की कई रानिया थी उनम नयी रानी कल्पसुदरी थी। वह कल्प सुदरी कामरूप देश के राजा की पुत्री थी रूप म अद्वितीय थी। वह कुरूप विकट वमा का नही चाहती थी। उपहारवमा न चतुरतापूवक अपना चित्र उसके पास भिजवाया ता उस चित्र का देखकर वह उस पर मुग्ध हो गयी। मठिका म मिली हुई वह वद्धा तथा कल्पसुदरी की अतरग पुष्करिका उपहारवर्मा की कूटनीति म सहायक हुए। यह रहस्य भी पता चला कि कल्पसुदरी की माता न उपहारवर्मा की माता स अपनी पुत्री का विवाह उनके पुत्र स हाने के लिए वचन लिया था।

उपहारवर्मा का मिलन बडी युक्ति स कल्पसुदरी स हो गया। कथाकार न उन दोना क प्रथम मिलन का अत्यत भाव मधुर चित्र खीचा है। लीला व्यापारो स वह और भी पशल बन गया है अभिसारकुज म उपहारवर्मा पहले पहुँचता है जो भलीभाँति सुसज्जित है जब उसे नूपुर की ध्वनि सुनायी पडती है तब वह कुछ क्षण क लिए लताओ की ओट मे छिप जाता है। रात्रि का समय है कल्पसुदरी अभिसार कुज म पहुँचकर उपहारवर्मा को न पाकर भ्रमित हो जाती है साचती है, क्या मरे साथ धोखा हुआ ? उस समय वह अत्यत वेदना म पश्चात्ताप करन लगती हैं। उसकी वेदना के वाक्यो को सुनन के बाद उपहारवमा प्रकट हो जाता है और पर्यायोक्ति मे उसके सौदय की प्रशसा कर आलिगन कर लता है।

कल्पसुदरी का अपने विश्वास मे लकर उपहारवर्मा अपन कपट जाल क लाभ म विकटवर्मा को माहित कर उसी रात्रि म उसे काटकर आग म हवन कर दता है और स्वय विकटवर्मा बनकर कल्पसुदरी के साथ राजभवन मे प्रवश करता

है। अपने माता पिता को तथा उनके आश्रितों को बन्धनमुक्त कर देता है। अन्त में, सारा रहस्य प्रकटकर माता पिता को प्रणाम करता है। इसी बीच चपवर सिंहवमा ने सहायता के लिए म दश भेजा और वह सेना के साथ यहाँ युद्ध करने आ गया।

राजवाहन ने इस वृत्तान्त को सुनकर अपनी टिप्पणी दी कि यद्यपि तुमने परस्त्री का अपहरण किया है किन्तु इस काम के द्वारा माता पिता तथा गुरुजनों की रक्षा हुई है दुष्ट शत्रु को उपाय से मारना उचित ही था, अत तुम्हारा यह कार्य अधम नहीं है, इससे धर्म और अर्थ की साधना हुई है।

चतुर्थ उच्छ्वास—काशीपुरी वाराणसी में अर्थपाल

अर्थपाल भ्रमण करते-करते वाराणसी में पहुँचा। वहाँ अन्धकासुर को मारने वाले भगवान शिव को प्रणाम कर जब वह प्रदक्षिणा कर रहा था तभी एक बलिष्ठ पुरुष को देखा जिसकी भुजाएँ लोहे के परिघ के समान दृढ़ थी, वह भुजाओं से परिकर कस रहा था पर जैसे रोने से उसके नेत्र लाल थे, वह दैन्य भाव से आक्रान्त था। अर्थपाल ने उसका परिचय पूछा। उसने अपनी कहानी सुनायी और बताया कि उसका घनिष्ठ मित्र काशी के राजा द्वारा प्राणदण्ड से दण्डित होनेवाला है उसके क्लेश से अत्यन्त दुःखी हो गया हूँ और अब स्वयं भी नहीं जीना चाहता हूँ। उसका नाम पूर्णभद्र था, वह पूर्व के किसी ग्रामाध्यक्ष का पुत्र था उसके मित्र का नाम कामपाल था। कामपाल राजा राजहंस के मन्त्री धर्मपाल का पुत्र था और यही कामपाल अर्थपाल का पिता है। इसने काशी नरेश की राजकुमारी कान्तिमती से चोरी से प्रेम सम्बन्ध स्थापित किया, उससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह क्रीडा पर्वत पर विसर्जित कर दिया गया था। अनेक विपत्तियों के बाद वह जीवित रहा जो राजहंस के पास पहुँचा और उसका नाम अर्थपाल रखा गया। अर्थपाल ने पूर्णभद्र तथा कामपाल की पूरी कहानी सुनने के बाद सारे रहस्य से अपने को अवगत किया। अब उसे अपने पिता की रक्षा करनी थी। पूर्णभद्र तथा कामपाल की साहसपूर्ण कहानी कथारस के प्रवाह में सहज धारा बनकर मगम करती है।

कामपाल श्मशान भूमि में वध के लिए ले जाया जा रहा था, साथ में जन-समुदाय था, उसकी आँखें निकालकर वध करने की आज्ञा थी। प्राणदण्ड की यह आज्ञा काशी-नरेश के न रहने पर उत्तराधिकारी पुत्र सिंहघोष ने दी थी। सिंहघोष जब पाँच वर्ष का था तब कामपाल ने ही उसे स्वामी मानकर उसका राज्याभिषेक कराया था। श्मशान भूमि की ओर ले जाते समय अर्थपाल ने एक विषधर साँप छोड़ा, जिसने कामपाल तथा चाण्डाल दोनों को डस लिया। कामपाल के पास जाकर उसने गारुडी विद्या से जीवित कर लिया। चाण्डाल मर गया। इसके बाद उसने

सिंहघोष को बन्दी बना लिया। अथपाल के माता पिता पुत्र की इस विजय म बड प्रसन्न हुए। सिंहघोष की पुत्री मणिकर्णिका से अथपाल का विवाह हो गया।

पचम उच्छ्वास—श्रावस्ती की राजकुमारी नवमालिका और कुमार प्रमति

प्रमति मणिभद्र नामक यक्ष की कन्या तारावती और कामपाल का लडका था। राजवाहन स बिछुडन के बाद घूमते घूमत विन्ध्य पवत म एक दिन किसी गगनचुम्बी वक्ष के नीच रात्रि निवास करन जा रहा था। सान के पहले उसन प्रार्थना की कि जिस दवता का आवास इस वक्ष के ऊपर हो, मैं उसकी शरण म हू वह मरी रक्षा कर। शिव के कण्ठ के समान नीली रात्रि चारा आर व्याप्त है हिंसक जीव घूम रहे हैं और मैं अकेला हूँ। यह कहकर वह सा गया।

लेकिन कुछ क्षण म ही उसन अद्भुत स्पश का अनुभव किया। उसक नत्र खुल गय तथा जब बायी ओर दृष्टि डाली तब दखा एक सुकुमारी किशारी उसके पाश्व म सो रही है जिसक मुख कमल के सुग ध का लकर चलनेवाली नि श्वास, जस शिव के ततीय नत्र स जलकर भस्म होन स स्फुलिंग मात्र शेष काम को पुन उज्जीवित कर रही है। वह आश्चय म पडा। डरत डरत उस सुकुमारी का आलिंगन किया। वह जाग गयी और भय, आश्चय लज्जा एव हर्ष के भावा म डूब गयी। फिर दोना सो गय। अब जब प्रमति जगा तब रात्रि बीत चुकी थी उसक सामन वही वन था, वही वक्ष था। वह सोचन लगा, क्या यह आसुरी माया थी?

सूय का उदय हो गया। प्रमति इस ऊहापोह म था कि तब तक एक खिन्न उज्ज्वल कान्तिवाली नारी वहा आयी। प्रमति उसका प्रणाम करना चाहता था कि उसने गोद म उठा लिया। यही उसकी माता यक्षकन्या तारावली थी। उसन सारा रहस्य प्रकट किया कहा—तुमको यहा वन म रात्रि म सात दखकर चिंतित हुई, उसी समय श्रावस्ती म त्र्यम्बक शिव का महोत्सव हो रहा था म उसम उपस्थित रहना चाहती थी अत तुमको अपनी तिरस्करिणी विद्या से उठा ले गयी वहा कहाँ रखती क्योकि वह उत्सव स्थल था अत तुमका श्रावस्ती की राजकुमारी नवमालिका के पाश्व मे लिटा दिया। सवरा होन स पूव पुन तुमको यहा वन भमि मे पहुँचा दिया। इतना कहकर वह कामपाल के पास जाने को उत्सुक हो गयी।

प्रमति कामभाव से पीडित होकर नवमालिका का प्राप्त करने के लिए श्रावस्ती की ओर चल पडा। रास्त म श्रावस्ती नगर के वणिको की एक बस्ती म कुक्कुटो का युद्ध हो रहा था। वहाँ प्रमति की भेंट एक चतुर वद्ध स हुई। जिसके यहाँ उसने रात्रि मे निवास किया और भोजन किया। चतुर वद्ध ने कहा आप मेरे

मित्र हैं, आवश्यकता पडने पर याद कीजिएगा। उधर राजकुमारी नवमालिका भी प्रमित के प्रेम मे कामवेदना से सन्तप्त थी। उसने प्रमित का चित्र बनाकर अपनी सेविकाओं को उसकी खोज के लिए भेजा था। उसकी एक सेविका चित्रपट लिये प्रमित से मिल गयी। प्रमित राजकुमारी का अनुराग जानकर और प्रयत्नशील हुआ। वह अपने मित्र चतुर वृद्ध के पास गया। उसका नाम पाचाल शर्मा था। उसकी सहायता, कपट-जाल और नीतियों से लम्बे क्रियाकलापों के बाद प्रमति राजकुमारी नवमालिका के साथ परिणय करने मे कृतकार्य हुआ। उसके अनन्तर सिंहवर्मा की सहायता करने चम्पा पहुँचा।

षष्ठ उच्छ्वास —दामलिप्त की राजकुमारी कन्दुकावती और मित्रगुप्त

मित्रगुप्त घूमते घूमते सुह्मप्रदेश के दामलिप्त नगर मे पहुँचा। वहाँ एक बाहरी उद्यान मे वीणा बजाते हुए अपनी प्रेयसी के लिए उत्कण्ठित एक युवक कोशदास को देखा। उसकी प्रेयसी चन्द्रसेना है जो दामलिप्त की राजकुमारी कन्दुकावती की सखी है। कन्दुकावती आज यहाँ प्रतिष्ठापित विन्ध्यवासिनी देवी के सामने कन्दुक-क्रीडा करने आयेगी। प्रत्येक महीने के कृत्तिका नक्षत्र के दिन वह देवी को प्रसन्न करने हेतु कन्दुक क्रीडा करती है। उसकी कन्दुक क्रीडा सभी देख सकते हैं। कन्दुक क्रीडा के समय जिस युवक को वह वरण करेगी, उसी से उसका परिणय होगा। उसके पिता तुगधन्वा से, उसके जन्म के पूर्व स्वप्न मे विन्ध्यवासिनी देवी ने यही कहा है। तथा जिससे इसका परिणय होगा इसका भाई उसका अनुचर बनकर रहेगा। कोशदास का सकट यह है कि उसकी प्रेयसी चन्द्रसेना को राजकुमार भीमधन्वा जबरदस्ती रोक रखना चाहता है। कुमार मित्रगुप्त ने उसे आश्वस्त किया।

थोडी देर मे चन्द्रसेना आ गयी युवक उसके मिलन से गद्गद हो गया। तीनो की कुछ समय बात हो रही थी तब तक मणिनूपुरो की ध्वनि सुनायी पडी। चन्द्रसेना ने कहा राजकुमारी आ गयी। और वह राजकुमारी के पास चली गयी।

आगे देवी विन्ध्यवासिनी को प्रणाम कर राजकुमारी कन्दुकावती ने अपनी कन्दुक क्रीडा आरम्भ की। कवि ने इसका विस्तृत और ललित वर्णन किया है कन्दुक-क्रीडा के साथ वह राजकुमारी के सौन्दर्य का भी चित्र खीचता है। मित्रगुप्त कोशदास के कन्धे का सहारा लेकर उस क्रीडा को देख रहा था। वह राजकुमारी को देखकर प्रेमासक्त हो गया यही बात नही थी, राजकुमारी भी उस पर रीझ गयी और बार बार अपने कटाक्ष मित्रगुप्त पर डालती रही।

राजकुमारी के साथ मित्रगुप्त के विवाह की बात निश्चित ही हो गयी, राजकुमार भीमधन्वा इसको जान गया। उसी बगीचे मे जहाँ राजकुमारी का प्रथम दर्शन हुआ था, मित्रगुप्त मन बहलाने गया। भीमधन्वा ने आकर मित्रगुप्त का स्वागत किया। अपने घर ले गया, स्नान भोजन कराया, इसके बाद जब मित्रगुप्त

गाढ़ निद्रा म सो रहा था, उसके हाथ-पैर लोहे की जजीर से बांधकर समुद्र म फिकवा दिया। सयोग से समुद्र म एक काष्ठ मिल गया, जिसके सहारे वह एक दिन एक रात समुद्र म तरता रहा, दूसरे दिन उस काल म यवनो की नौका उधर आयी। ये यवन शायद कालयवन द्वीप के रहे होंगे। नाविकों न मित्रगुप्त को समुद्र से निकालकर अपनी नौका पर रखा और अपने स्वामी से, जिसका नाम रामषु था, कहा— 'जजीर म बधा एक पुरुष मिल गया है इससे अच्छी सेवा ली जा सकती है। यह बलिष्ठ है एक क्षण म ही द्राक्षा की हजार लताएँ सींच सकता है।' उनके यह कहते ही नौकाओ स परिवृत मदगु नामक युद्ध की नौका वहाँ आ गयी। दोनों ओर से युद्ध हुआ। यवन पराजित हो गये। तब मित्रगुप्त ने कहा, मेरी जजीर खोल दो, मैं तुम्हारे शत्रुओं को पराजित कर दूंगा। जजीर खोल दिये जाने पर मित्रगुप्त न भाले और धनुष बाण से उन शत्रुओं के अंग काट डाले और नौकाओं के स्वामी को जीवित पकड़ लिया। वह स्वामी राजकुमार भीमधन्वा था। दैव की विचित्र गति है, जिस जजीर से मित्रगुप्त को बाँधा गया था अब उसी जजीर म यवनों ने भीमधन्वा को बाँधकर नाव म बन्दी बना लिया। नाव म बन्दी भीमधन्वा को लिये मित्रगुप्त चल पड़ा।

नाव आगे जाकर एक अच्छे द्वीप के तट पर लगी। मित्रगुप्त नाव से उतरा। वहाँ विशाल पर्वत और सरोवर था। सरोवर का जल पिया और मृणाल खण्ड खाये। तब तक एक भयकर ब्रह्मराक्षस वहाँ प्रकट हुआ, उसने मित्रगुप्त म उसका परिचय पूछा फिर कहा मेरे प्रश्नों का उत्तर दो नहीं तो तुम्हें खा जाऊँगा। मित्रगुप्त ने कहा—पूछिए तो जो होगा देखा जायगा।

प्रश्न और उत्तर म आर्या छन्द की रचना हो गयी थी—

> कि क्रूर? स्त्रीहृदयम कि गृहिण प्रियहिताय? दारगुणा।
> क काम? सकल्प कि दुष्करसाधनम? प्रज्ञा॥

प्रश्न और उत्तर का क्रम यह है—ससार मे निष्ठुर कौन है, स्त्री का हृदय। गृहस्थ के लिए प्रिय और हित करनेवाला कौन है? स्त्री के गुण अर्थात गुणवती स्त्री। इष्ट का साधन क्या है? दृढ निश्चय। दुष्कर काय को सिद्ध करने का उपाय क्या है? बुद्धि।

मित्रगुप्त ने इसके साथ ही कहा कि धूमिनी गोमिनी, निम्बवती तथा नितम्बवती स्त्रियों की कथाएँ इन उत्तरों का प्रमाण हैं। ब्रह्मराक्षस ने उन कथाओं को सुनना चाहा मित्रगुप्त ने सुना दी। ब्रह्मराक्षस ने प्रसन्न होकर मित्रगुप्त का अभिनन्दन किया।

इसी समय आकाश म रोती हुई किसी युवती के आँसू नीचे गिरे। मित्रगुप्त न ऊपर देखा कोई राक्षस उस युवती को पकड़े लिये जा रहा है। तत्काल मित्र ब्रह्मराक्षस ने मित्रगुप्त के भाव को समझ लिया वह आकाश मे उड़ा राक्षस को

पकड लिया और दोनो का बाहुयुद्ध होने लगा। युवती कल्पवक्ष की मजरी के समान नीचे गिर पडी। मित्रगुप्त ने गिरने से पहले अपन दोनो हाथो म उस युवती को ले लिया। वह युवती राजकुमारी कन्दुकावती थी। आकाश म राक्षस और ब्रह्मराक्षस दोनो लडकर नष्ट हो गये। कन्दुकावती न बताया कि उस जब मालूम हुआ कि भाई ने मेरे प्रिय को जजीर स बँधवाकर समुद्र म फिकवा दिया है तब वियोग म सन्तप्त होकर अकेले ही क्रीडावन मे प्राण त्याग दन क लिए आयी थी कि इस राक्षस ने मुझ अकेले पाकर पकड लिया।

पुत्र तथा पुत्री दोना के नष्ट हो जाने से राजा तुगध वा विरक्त होकर गगा तट पर तप करन जा रहा था। मित्रगुप्त उनको दोना सन्ताना को सुरक्षित लेकर पहुचा और राजकुमारी को ब्याह कर राजा का प्रिय जामाता बना।

मित्रगुप्त उसके बाद युद्ध म सिंहवर्मा की सहायता करन चम्पा आया, जहाँ उसका भेट राजवाहन तथा अन्य साथिया स हुइ।

सप्तम उच्छ्वास — मन्त्रगुप्त द्वारा कलिग राजकुमारी कनकलेखा का उद्धार

राजवाहन स बिछुडने के बाद मन्त्रगुप्त अपन स्वामी राजकुमार की खोज मे पयटन करत-करत कलिंग पहुँचा। वहाँ श्मशान की भूमि क निकट एक वक्ष के नीचे रात्रि के समय पत्ता का बिछौना बनाकर सो गया। सहसा कुछ अस्पष्ट बातो की ध्वनि सुनकर उसकी नींद टूट गयी। वक्ष पर निवास करनेवाले आकाशचारी राक्षस किंकर और किंकरी अपने रमणकाल म दुख प्रकट कर रहे थे कि कोई तान्त्रिक असमय म किंकर को अपनी सेवा के लिए बुला लेता है। तान्त्रिक ने सिद्धियो स किंकर का वश मे कर रखा था। मन्त्रगुप्त न किंकर से तान्त्रिक की सिद्धभूमि का पता पूछा और वहीं चल पडा। तान्त्रिक हड्डियो की माला पहने अगार का भस्म लपटे हवन कर रहा था, कुछ देर बाद किंकर उसकी आज्ञानुसार कलिंग की राजकुमारी कनकलेखा को राजप्रासाद स सोते मे उठाकर ले आया। तान्त्रिक अपनी किसी सिद्धि के लिए राजकुमारी का सिर हवन करना चाहता था, जसे ही उसने तलवार उठायी, मन्त्रगुप्त ने उसकी तलवार छीनकर उसी का जटामण्डित सिर काट डाला और उसे वृक्ष के कोटर म फेंक दिया। उसके इस वीरतापूण काय स राक्षस किंकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसन मन्त्रगुप्त स हाथ जोडकर कहा—अब मुझे आदेश करें, क्या करूँ। मन्त्रगुप्त न कहा, राजकुमारी को उसके राजभवन मे पहुँचा दो यही सज्जनता का धम है।

जब मन्त्रगुप्त राक्षस किंकर को यह परामर्श दे रहा था, राजकुमारी कनकलेखा विलास के साथ काम भाव की वेदना स निश्वास लेती हुई मधुर कण्ठ से बोली—'आय! मुझे अपन चरण-कमल की धूलि की कणिका समझें और मेरा

तिरस्कार न करें।" यहाँ कवि न कनकलेखा के विलाम का अच्छा भावचित्र अंकित किया है।

मन्त्रगुप्त राक्षस किंकर की सहायता से कनकलेखा के साथ उसके राजप्रासाद म पहुच गया। कनकलेखा ने अपनी दासिया स उसका परिचय कराया। मन्त्रगुप्त वहा उसक साथ शृगार विलास म कुछ समय तक रहा।

तब तक वसन्त ऋतु का आगमन हुआ। कलिंगराज कदन अपन परिवार और कन्या क साथ समुद्रतट के वन म विहार करन आया। वहाँ जब वह सगीत, गान और रमणियो के विलास म आसक्त था कि आन्ध्र नरेश जयसिंह न सहसा आक्रमण कर सभी को बन्दी बना लिया। जयसिंह राजकुमारी कनकलखा क साथ परिणय करना चाहता था।

मन्त्रगुप्त न इस विपत्ति का बुद्धिकौशल और वीरता स निवारण किया। उसन सिद्धतान्त्रिक का कपटवेष रचकर आन्ध्रनरश को मार डाला। कलिंगराज का जामाता बना और आन्ध्र मण्डल का भी स्वामी बन गया।

अगदश पर चण्डवर्मा के आक्रमण का समाचार पाकर सना के साथ सिंहवर्मा की सहायता करन चम्पा आया, जहा वे सभी आपस म मिल।

अष्टम उच्छ्वास—विदभ की कूटनीति और कुमार विश्रुत

इस उच्छ्वास म विदभ राज्य के पतन की चर्चा विस्तार से की गयी है। वहा क राजा अनन्तवर्मा क अनाचार मे लिप्त होन और दुर्नीतिया मे पडन के कारण उसके पडासी राज्य अश्मक ने उस पर आक्रमण किया। आक्रमण म उसन अन्य राज्यो को भी सहयोगी बनाया, य बडे और छोटे राज्य थ—कुन्तल, मुरल ऋचीक (ऋषिक शर) कोंकण तथा नासिक्य। नर्मदा नदी के तट क इधर उधर ही इनकी स्थिति थी। ऐसा लगता है कि विदभ के राज्य का पतन कथाकार कवि दण्डी का वतमान है। उसन बडी रुचि से प्रत्यक्षदर्शी की तरह वहा की राजनीति का और विहारभद्र तथा इन्द्रपालित नामक चुगलखोरो द्वारा वशीभूत किय गय राजा अनन्तवर्मा के स्वच्छन्द विलास अनाचार प्रजा की उपेक्षा आदि स्थितिया का सटीक वणन किया है। इस प्रसग म भारतीय पुराने राजनीतिविदो और नीतिकारो के मत सम्मता एव विचारो की भी चर्चा आती है।

जब विश्रुत घूमते हुए विदभ मण्डल म पहुँचता है तब विदभ का पतन हा चुका था अनन्तवर्मा को मारकर अश्मकनरेश वसन्तभानु न राज्य का सारा कोश और धन स्वय लूट लिया था और अपन सहयोगी भीलपति को द दिया था। राज्य पर अधिकार कर लिया था। विदभ के शासक भोजवश के थे, माहिष्मती इनकी राजधानी थी। अनन्तवर्मा क मारे जान के बाद रानी वसुन्धरा अपन आठ वष क पुत्र भास्करवर्मा तथा पुत्री मजुवादिनी का लकर रक्षा के लिए निकल पडी

उनके साथ सचिव वसुरक्षित भी था पर दो दिन बाद ज्वर से उसकी मृत्यु हो गयी। इस बालक की हत्या इसका सौतला भाई मित्रवर्मा करना चाहता था। अतः रानी वसुंधरा ने अपने सेवक नालीजघ को इस बालक की रक्षा का भार सौंपा। कहा कि इसे छिपाकर रखो, और जहाँ रहना उसकी सूचना मुझे देते रहना। वन म तथा ग्वालो के घोष म बालक के साथ वह सवक नालीजघ घूमता रहा। तथा जहाँ भी राजपुरुषो के आने की आशका होती थी वहाँ स हट जाता था। वन के माग मे बालक को बडी तज प्यास लगी वह वद्ध सवक एक कूप से पानी निकालने लगा कि उसी मे गिर पडा। वद्ध कुएँ मे था और भूख प्यास से व्याकुल बालक ऊपर था। उसी समय कुमार विश्रुत वहाँ पहुँच गया। बालक से यह घटना जानकर उसने लताओ की रस्सी बनायी और वृद्ध को कुएँ से बाहर निकाला। विश्रुत न वद्ध स उसका और बालक का परिचय पूछा। वद्ध ने विदभ नरेश अनन्तवर्मा के पतन की कहानी विस्तार स सुनायी।

राज्य और राजनीति म हुई उथल पुथल की पूरी कहानी सुनकर विश्रुत न वद्ध से पूछा—इस बालक की माता किस जाति की है। वद्ध ने उत्तर दिया—इस बालक की माता का जन्म कौशल नरेश कुसुमधन्वा और पाटलिपुत्र के वश्य वैश्रवण की पुत्री सागरदत्ता स हुआ है। यह सुनकर विश्रुत प्रसन्न हुआ उसने कहा तब तो इस बालक की माता और मेरे पिता के मातामह (नाना) एक ही है, इस बालक से मुझे अपनत्व है। यह कहकर उसन बालक को स्नेहवश छाती से लगा लिया और बताया कि मेरे पिता का नाम सुश्रुत है। उसन उस वृद्ध और बालक को आश्वासन दिया कि अब मैं मदमत्त अश्मकनरेश को नीति से ही पराजित कर इस बालक को इसके पिता के राज्यपद पर प्रतिष्ठित करूँगा।

यही से विश्रुत की नीति और कूटनीति के क्रिया कलाप आरम्भ होते हैं। जब उनकी बातचीत समाप्त हुई उसी समय दो हरिण भागते हुए उधर आये, वे व्याध के तीन बाणो से बचकर भाग निकले थे, तब तक व्याध भी आ गया अब उसके पास दो ही बाण शेष बचे थे। विश्रुत ने व्याध से धनुष और दोनो बाण लेकर उनसे अचूक निशाना साधकर दोनो ही हरिणो का आखेट कर लिया। एक हरिण व्याध को दे दिया और दूसरे का स्वयं लेकर उसके मांस को भूनकर बालक तथा नालीजघ सवक की भूख शान्त की।

विश्रुत न पहला कूटनीतिक काय किया, उसने नालीजघ से यह प्रचार करा दिया कि बालक भास्करवर्मा को सिंह खा गया है। महादेवी वसुंधरा को सदेश कहलाया जिसमे इसके अनन्तर विष बुझी पुष्पमाला से मित्रवर्मा को मार देने की क्रिया बतायी थी। कई प्रकार की भेदनीतियो से तथा प्रजा म दैवी विश्वास उत्पन्न करके विश्रुत ने भास्करवर्मा को अपने पिता के राज्यपद पर प्रतिष्ठित कर दिया। उसका मुण्डन कराकर उपनयन कराया। उसे शिक्षा और राजनीति

शिक्षा दी। कोशल देश के आयकेतु को उसका सचिव नियुक्त किया। महादेवी वसुंधरा ने मजुवादिनी का परिणय भी विश्रुत से कर दिया।

इसके बाद अश्मक नरेश से विदर्भ का युद्ध हुआ। विश्रुत अश्वारूढ होकर युद्ध भूमि मे लडने आया, उसने युद्ध में अश्मकपति वसंतभानु का शिर काटकर गिरा दिया। विश्रुत द्वारा घोषणा किये जाने के बाद शत्रु सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया। सैनिकों ने अपने अपने वाहनो से उतरकर राजपुत्र भास्करवर्मा को प्रणाम किया। अब भास्करवर्मा का विधिवत राज्याभिषेक किया गया। विदर्भ-पति ने प्रचण्डवर्मा का उत्कल राज्य उपहार मे विश्रुत को दे दिया। इसके अनंतर विश्रुत सेना लेकर सिंहवर्मा की सहायता करने चम्पा आया।

सभी राजकुमारों का भ्रमण वृत्तान्त सुनने के बाद राजवाहन ने पिता का संदेश प्राप्त किया और उनके साथ पुष्पपुर आया। माता पिता को प्रणाम किया। मुनि वामदेव का दर्शन करने गया जिनका आशीर्वाद लेकर दिग्विजय की यात्रा का अभियान किया था। पुष्पपुर तथा मानसार के राज्य पर राजवाहन का राज्या-भिषेक हुआ शेष राज्य नव कुमारों में बांट दिये गये। राजहंस और वसुमती ने मुनि वामदेव के आश्रम में रहकर वानप्रस्थ जीवन बिताया।

इस प्रकार 'दशकुमारचरित' का कथा-वस्तुविन्यास जीवन और आनन्द की पूर्ण स्थिति में समाप्त होता है।

8

दशकुमार चरित का सामाजिक जीवन

जसे राज्या के आख्यान इस कथा-ग्र थ मे आये है उनको पढन म यह प्रतीत हाता है कि रचयिता कवि का देश-काल छोट छोट राज्यो का है। ग्रामाध्यक्षो का परामश भी राज्यशासन मे प्रमुख हिस्सा रखता था। लोकत त्र का भी नाम लिया गया है(न हि मुनिरिव नरपतिरुपशमरतिरभिभवितुमरिकुलमलम अवलम्बितु च लोकतन्त्रम, अष्टम उच्छवास) वैस यहाँ लोकत त्र का अथ प्रजात न राज्य नही, लोक को वश मे रखने की सुव्यवस्था स है। ग्रामाध्यक्ष को कही कहा मौल (मुखिया) भी कहा जाता था (अष्टम उच्छवास) राजनीतिविदा मे पहले उच्छ्वास म कौटिल्य और काम दक का ही नाम लिया गया है आठवें उच्छवास म चाणक्य (कौटिल्य) के मत को उद्धत भी किया गया ह। विहारभद्र ने अन त वर्मा से सदाचरण का उपहास करते हुए जिन नीतिकारा पर व्यग्य किया है उनमे चाणक्य और काम दक का नाम नही है वे है—शुक्र आगिरस विशालाक्ष, बाहुदन्तिपुत्र, पराशर। इनके प्रति वह व्यग्य करता है कि क्या इ होन काम क्रोध आदि छह शत्रुओ को जीत लिया था, या शास्त्र के नियमा का पालन करत थे। विहारभद्र न राजा अनन्तवर्मा को अनाचार और विलास का लम्बा उपदेश दिया है, वह इस बात का नमूना है कि राजा का पतन जीवन के हरक्षेत्र म किस प्रकार हो सकता है। कथाकार दण्डी के इस वणन का स्वतन्त्र अस्तित्व है, क्योकि ये बातें किसी नीतिशास्त्र मे नही मिलती। यह दण्डी का नूतन नीतिशास्त्र है। (अष्टम उच्छवास)

राजकुमारों का भी मुण्डन तथा उपनयन सस्कार कर दिय जाने के बाद शिक्षा देन का विधान था। (पूव० प्रथम उच्छवास, चरित० अष्टम उच्छवास) राजवाहनोऽनुक्रमेण चौलोपनयनादिसंस्कारजातमलभत। गुणवत्यहनि भद्राकृत-मुपनाय्य) राजकुमारो को परम्परागत चार विद्याओ, (त्रयी, आन्वीक्षिकी, दडनीति वाता) के अतिरिक्त इतिहात, पुराण धम, ज्योतिष, तक, मीमासा आदि शास्त्रों का भी परिचय कराया जाता था। यह सब ज्ञान गुरुकुल मे हाता था। ज्योतिष के साथ सामुद्रिक (हस्तरेखाशास्त्र) का भी ज्ञान प्राप्त किया जाता था। गुरुकुल के अतिरिक्त अन्य स्रोतो स व चौसठ कलाओ का ज्ञान प्राप्त करते

थे। इन चौसठ कलाओं में काव्य, नाटक, आख्यान आदि की रचना तो सम्मिलित *हो थी द्यूत क्रीडा, चौर्यशास्त्र, कपटकला कामकला, तन्त्र-मन्त्र आदि का ठोस* ज्ञान राजकुमारों को होता था। आठवें उच्छ्वास में राजनीतिशास्त्र का बहत्तर पत्तों वाला वृक्ष कहा गया है। सिक्कों में दीनार (सुवर्णमुद्रा) और कावणी (कौड़ी) का नाम आया है।

समाज में चार वर्णों की व्यवस्था थी। विरक्त होने पर लोग संन्यासी नहीं, बौद्ध क्षपणक होते थे। बौद्ध क्षपणक होनेवाले अधिकांश वैश्य व्यापारी थे। धन का विनाश या स्त्री का नष्ट होना (अपहरण आदि) वैराग्य के कारण थे। बौद्ध क्षपणक और भिक्षुणियाँ मठों या मठिकाओं में रहती थीं। बौद्ध क्षपणक के *अपने स्वधर्म वैदिक धर्म में लौट आने का भी उल्लेख है (द्वि० उ०) बौद्ध* भिक्षुणियाँ कामी पुरुषों या अभिसारिकाओं की दूती का काम करती थीं। यहाँ तक कि वे वेश्याओं की भी दूती बनती थीं—काममञ्जर्या प्रधानदूती धर्मरक्षिता नाम शाक्यभिक्षुकी चीवरपिण्डदानादिनोपसंगृह्य। (द्वितीय उच्छ्वास)

*यह सामाजिक स्थिति बृहत्कथा में आये कथा प्रसंगों से मेल रखती है। जैना*यतन भी थे उनकी भी स्थिति बौद्धमठों की तरह निम्न थी। व्याध विन्ध्याटवी में बाघ हरिण आदि के आखेट के उपरान्त उनके चर्म बेचकर अपनी जीविका कमाते थे (अष्टम उच्छ्वास)। वेश्याओं का स्वतन्त्र अस्तित्व था, वे सम्भ्रान्त *समाज का एक अंग थीं अपहारवर्मा के चरित में मरीचि मुनि के ठगे जाने के* प्रसंग में कथाकार ने वेश्या माधवसेना के मुख से वेश्या के जीवन का और समाज में उसके अस्तित्व का रोचक तथा विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया है। वेश्या अपनी कन्या का लालन पालन बड़ी रुचि से करती थी, जिससे वह अच्छी नर्तकी बन *सके वेश्या भरसक यह प्रयत्न करती थी कि धनी युवकों से ही उसकी पुत्री* मिल सके, लेकिन यदि किसी गुणवान युवक पर वह रीझ जाये, जिसके पास धन न हो तो वेश्या का यह अधिकार था कि उसका शुल्क उसके सम्बन्धियों तक से दावा करके ले सकती थी। (द्वितीय उच्छ्वास)

द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य) में ब्राह्मण तीनों वर्ग की कन्याओं से और क्षत्रिय दो वर्णों (क्षत्रिय वैश्य) की कन्याओं से प्रायः विवाह करते थे।

ब्राह्मण का जीवन समाज में बहुमुखी था। वह विद्याध्ययन के क्षेत्र में अधिकार रखता था। युद्ध भी करता था। राजसभाओं में विट सभासद भी होता था। पाञ्चालशर्मा धूर्तों और विटों में अग्रणी है (पंचम उच्छ्वास) कुमार प्रमति का विवाह श्रावस्ती की राजकुमारी से उसके ही कपट कौशल से सम्पन्न हो पाता है।

विन्ध्याटवी में उस युग में भी ऐसे ब्राह्मण थे जो पुलिन्दों के साथ संगठन कर जनपदों में प्रवेश कर धनियों को लूटा करते थे। उनके स्त्री-बालकों को

हरण कर धन के लिए बन्दी बनाते थे। उनका खाना पीना उन्ही किरातो के साथ होता था। कोई कुलाचार नही था। पर थे वे ब्राह्मण। उन्ही ब्राह्मणो मे मातग था, जिसकी भेंट राजवाहन से हुई थी। (पूर्व० द्वितीय उच्छ्वास)

तान्त्रिक नरबलि किया करते थे। जगली जातियाँ भी देवी देवता के प्रसन्नार्थ बालको को काटकर चढाती थी। किन्तु चरित भाग के छठे उच्छ्वास मे ऐसा भी प्रसग आया है कि अकाल के समय परिवारवालो ने अपनी स्त्रियो को मारकर खा लिया है।

कवि ने सम्भ्रान्त कुलो का ही वर्णन किया है अथवा विटा जुआडियो, क्षपणको आदि के जीवन के प्रसग आये हैं, जो समाज के क्रियाशील पक्ष नही हैं, वरन समाज की समृद्धि पर जीवित रहते हैं। ग्रामाध्यक्षो की चर्चा अवश्य हुई है। विदर्भ के युद्ध मे ग्रामाध्यक्ष मौलो ने राजा की पराजय के बाद राजपुत्र की रक्षा मे स्वामिभक्ति का परिचय दिया है। तो भी विभव-सम्पन्न समाज के बीच कवि की दृष्टि एक जगह सामान्य रूप से गरीबी का जीवन व्यतीत करती कन्या गोमिनी की ओर गयी है जिसके माता पिता मर चुके हैं पर जिसने अपनी उपमाता से सदाचार एवं गृहस्थ की कला-कुशलता की भरपूर शिक्षा पायी है। वह अपने भावी वर के एक प्रस्थ धान को कूटकर चावल निकाल कर सविधि भोजन तैयार कर देती है। धान की भूसी (तुष) तथा कना खुर्दी (कण किशारक) को बेचकर, उनसे प्राप्त काकणी (कौडी) से भोजन की अन्य आवश्यक वस्तुएँ मँगा लेती है। उसमे नारी के वे गुण हैं जो गृहस्थ को सुखी बनाते है। इसके साथ ही कवि ने अत्यन्त दुष्ट स्त्री धूमिनी का चरित्र दिया है, जो अपने पर उपकार करनेवाले पति को ही स्वयं दूसरे से प्रेम कर प्राणदड दिलाने को तत्पर है। (षष्ठ उच्छ्वास)।

कालयवन द्वीप से भारत के व्यापार की चर्चा आती है। ये यवन नाविक पश्चिमी समुद्र से व्यापार करने आते होंगे, कवि ने यवन-नौकाओ के स्वामी का नाम रामेषु दिया है। उसके नाविको ने द्राक्षालता के नीचे जाने की बात की है। रामेषु शब्द सस्कृत बनाया गया लगता है। यह किसी देश के नाम से व्युत्पन्न प्रतीत होता है। भारतीय नौकाओ की उनके साथ प्रतिस्पर्धा एवं सघर्ष भी होते थे। सुह्म के राजकुमार ने यवन नौकाओ पर अपनी 'मद्गु' जलनौका से आक्रमण किया था।

राजाओ के कारागार सामान्य थे। कारागार से भाग जाना बहुत जटिल बात नही थी। मतवाले हाथी से प्राणदड दिये जाने का नियम था, लेकिन प्राणदड पाने वाला व्यक्ति यदि हाथी को पछाड देता था तो उसे मुक्त कर दिया जाता था। (चतुर्थ उच्छ्वास)।

ब्रह्मराक्षस आकाशचारी किन्नर या राक्षस जैसे प्राणियो के साथ तन्त्र मन्त्र

से वैसे लोगो का सम्पक था। उज्जयिनी के महाकाल मंदिर की चर्चा है काशी म अंधकासुर का दमन करनेवाले शिव का निवास है। शिवपुत्र कार्तिकेय की चर्चा कई बार आयी है। हस्तिवक्त्र (गजानन) देवता का भी उल्लेख हुआ है— अदश्यत च स्वप्ने हस्तिवक्त्रो भगवान् (ततीय उच्छवास) विंध्यवासिनी दवी के मंदिर विंध्याटवी मे यत्र तत्र हैं, सुह्य मे भी है, विदभ मे भी हैं। श्रावस्ती म त्र्यम्बकेश्वर महादेव का स्थान था।

समाज या उत्सवो का आयोजन प्राय होता था। युवको मे कामविलास की प्रवत्ति सवत्र थी और वे विलास द्यूत कपट आदि के आचरण म प्रवीणता रखते थे। कुक्कुटो का युद्ध भी उत्सव का अग हुआ करता था। ऐंद्रजालिका (जादूगरो) का चमत्कार देखन के लिए भो आयोजन होत थे। राजा भी ऐंद्रजालिक के प्रदशन का आयोजन कराता था।

स्त्रिया दो वस्त्र धारण करती थी—एक अध वस्त्र और दूसरा ऊपर का उत्तरीय। उत्तरीय वक्ष स्थल को ढकने के लिए होता था। राजकुमारिया चीन देश का रशमी वस्त्र पहनती थी। दूसरे आभूषणो के साथ वे केशो का पुष्पमालाओ से सजाती थी तथा कान म तमाल आदि वृक्षो के उपयुक्त किसलय भी धारण करती थी। चन्दन का अगराग लगाना सामान्य वात थी। शय्या पर फूलो की पखुडिया बिखेर दी जाती थी। भ गारपात्र म पीन का जल अगुरु और पाटल पुष्पो से सुगन्धित कर रखा जाता था।

सिद्ध तपस्विया के रूप म केवल दो नाम आये हैं—मुनि वामदव और मरीचि मुनि। मरीचि मुनि की तपस्या काममजरी ने भग कर दी थी पर उन्हान पुन सिद्धि अर्जित कर लिया था। अपहारवर्मा को उन्होने ही राजवाहन के मिलने की पूव सूचना दी थी।

9

दशकुमार चरित का रचना-सौन्दर्य

गद्य-काव्य की प्रमुख दो विधाएँ हैं—आख्यायिका और कथा। जिस समय दशकुमारचरित की रचना हुई उस समय कथा के स्वरूप को प्रतिष्ठा हो रही थी और कथा के प्रति साहित्य प्रेमियो का झुकाव अधिक था। आख्यायिका की प्रतिष्ठा पहले स थी, आख्यायिका मे राजचरित होता था और उसकी रचना संस्कृत भाषा मे ही होती थी। कथा प्राकृत और अपभ्र श म भी लिखी जाती थी। कथानक का उच्छवासो मे विभाजन और अपनी कहानी को नायक द्वारा स्वय कहा जाना यह आख्यायिका का ही लक्षण था। किन्तु 'काव्यादश मे कथा और आख्यायिका की जाति (विधा) एक ही कही गयी, केवल सज्ञाए (नाम) दो थी (काव्यादश 1/28)। काव्यादश का अभिमत पक्ष कथा के प्रति है और उसके मत म उच्छवासो मे विभाजन तथा नायक द्वारा स्वय कहानी को कहना— कथा' का भी लक्षण मान लेने म कोई दोष नही है। 'दशकुमार चरित' अपने स्वरूप के अनुसार उस समय की विदग्ध गोष्ठियो मे आख्यायिका के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ होगा, क्योकि इसका विभाजन उच्छवासो म है और प्रत्यक कुमार अपनी कहानी को स्वय ही कहता है।

गद्य काव्य को उज्जीवित करनेवाले तत्त्व पद-विन्यास म ओज गुण और समासबहुल प्रयोग हैं। (ओज समासभूयस्त्वम एतदगद्यस्य जीवितम।) (काव्यादश 1/80)। ओजगुण का अर्थ केवल महाप्राण तथा संयुक्त वर्णों का प्रयोग ही नही है लघु एव अल्पप्राण अक्षरो के अनुप्रासयुक्त नाद सगीतमय पद विन्यास भी ओजगुण का दूसरा स्वरूप है और वह आख्यायिका आदि की रचना मे देखा जाता है। (काव्यादश 1/81)

इन विशेषताओ के अतिरिक्त आख्यायिका या कथा का जीवित या उसकी आत्मा अविच्छिन्न कथारस है। अपनी रचना मे कथा रस की अविच्छिन्नता बनाये रखनेवाले कवि कोई ही होते है। (केऽप्यजस्रं कथारसे तिलकमजरी)

कवि न ग्रन्थ का आरम्भ भगवान् वामन के चरण (अघ्रिदण्ड) की व दना स किया है जिस चरण न अपने तीन डग (विक्रम) मे तीनो लोको को नाप लिया है। आकाश को छूता हुआ वह विराट चरण कई रूपो मे दिखायी पडता है—वह ब्रह्माण्ड रूपी छत्र का दण्ड है ब्रह्मा का जन्म जिस कमल पर हुआ उसका वह

अनिवचनीय चमत्कार हो जाता है। द्वितीय उच्छवास म अपहारवर्मा गरीब उदारक (धनमित्र) की चहती प्रिया को रात्रि म ले जाकर उसे सौंपता है। वह स्वय चोरी करके निकला था कि एक युवती आभूषणा स सजी दिखायी पडी, उसके हाथ मे आभूषणा का भाण्ड भी था। वह अपने प्रिय उदारक के पास जा रही थी, जिसके धनहीन हो जाने से उसके साथ अब पिता विवाह करन को तैयार नही थे। उस अधेरी रात्रि म युवती अपहारवर्मा को देखकर घबडायी, पर उसन उसे आश्वस्त किया, और रास्ते में दूसर विघ्ना से उसकी रक्षा करत हुए ले जाकर उदारक को सौप दिया, सौंपत हुए कहा—

"अहमस्मि कोऽपि तस्कर । त्वद्गतेन चेतसा सहायभूतेन त्वामिमामभिसरन्तीमन्तरापलभ्य कृपया त्वत्समीपमनैपम् । भूपणमिदमस्या ' इत्यशुपटलपाटितध्वान्तजाल तदर्पितवान ।"

(मैं कोई चोर हूँ। इस युवती का मन तुममें लगा है, उसी मन का सहायक बनकर, तुमसे मिलन के लिए आती हुई इसको माग में पाकर (रास्ते के विघ्ना का अनुभव कर) दयावश तुम्हारे निकट ले आया। यह है गहना का भाण्ड इसका, यह कहकर जिन आभूषणो की चमक से अन्धकार दूर हो रहा था, उन्हे उसको अर्पित कर दिया।)

उदारक यह देख सुनकर एक साथ लज्जा, हर्ष और घबडाहट में भर गया और अपहारवर्मा के प्रति कृतज्ञता में उसका हृदय फूट पडा—

"आय, त्वयवेयमस्या निशि प्रिया मे दत्ता । वाक् पुनममापहृता । तथा हि न जाने वक्तु त्वत्कर्मैतदद्भुतमिति । प्रियादानस्य प्रतिदानमिद शरीरमिति तदलाभे निधनोन्मुखमिदमपि त्वयव दत्तम ।'

अर्थात आर्य! तुमने ही इस रात मे इस प्रिया को मेरे पास पहुँचा दिया। अब ता मेरी वाणी का हरण हो गया, वह यह कि कुछ कहन के लिए समय नही हो पा रहा हूँ तुम्हारा यह काय कितना अदभुत है। प्रिया को मुझ देने के बदले यह शरीर तुम्हे अर्पित है, यदि प्रिया न मिलती ता इस शरीर का नाश होना था, इसलिए अब यह शरीर भी तुमने ही दिया।

रक्षा पुरुषो की आख म धूल झाककर बन्धन से छटकर जाता हुआ अपहारवमा अपनी कूट हितैषिणी शृगालिका दासी स पागल पुत्र की भाषा मे कहता है—

"स्थविर, केन देवो मातरिश्वा बद्धपूव ? किमेत काका शौट्ीयस्य मे निग्रहीतार ? शान्त पापम् ।' (द्वितीय उच्छ्वास)

—अरी वद्ध! क्या कभी पहल किसी ने पवन दवता को बाँधा है? क्या ये कौवे मुझ जसे बाज को पकड सकते हैं? पाप शान्त हो।

अथबोध को तुरन्त उपस्थित करनेवाले य वाक्य और इनम निहित निदर्शना

का अलंकार मान्य कवि की भाषा-शक्ति का प्रमाण है।

छोटे छोटे वाक्यों में अकाल का यह चित्रण है, जिसे पढ़ते ही भय बोध होने जाता है—

> तपु जीवत्सु न वषषु वर्षाणि द्वादश दशशताक्ष, क्षीणसार सस्यम ओषध्यो वन्ध्या न फलवन्तो वानस्पतय क्लीबा मघा, क्षीणस्रोतस स्रवन्त्य, निर्निम्यन्दा युत्समण्डलानि विरलीभूत कन्दमूलफलम, अवहीना कथा, गलिता कल्याणोत्सवक्रिया, बहुलीभूतानि तस्करकुलानि, अन्योन्यमभक्षयन्प्रजा, शून्यीभूतानि नगर ग्रामखर्वटपुटभेदनानि। (षष्ठ उच्छवास)

अकाल के समय सामाजिक चेतना का लोप और अपने-अपने जीवन का जीने की चिन्ता किस प्रकार बलवती हो जाती है अत के चार पाँच वाक्यों में कवि ने सीमित पदों में व्यक्त कर दिया है—

> लोग कथाएं कहना भूल गये, मांगलिक उत्सवों के आयोजन कहीं दिखाई नहीं पड़ते चारों ओर चोरों के समुदाय बढ़ गये, प्रजा एक-दूसरे का भक्षण करने लगी जीविका की खोज में लोगों के अन्यत्र चले जाने से नगर, गाँव, पुरवे और बाजारों की बस्तियाँ सुनसान हो गयीं।

'दशकुमार चरित' का मुख्य आकर्षण नारी अनुराग के रंगीन चित्रण हैं, जिनकी विविधता इसमें ही सिद्ध है कि दश राजकुमारों ने दश राजकुमारियों से प्रेम किया है उनके प्रथम मिलन की भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ हैं किसी का अपनी प्रिया का प्रथम दर्शन सोते हुए मिला किसी को लज्जा से अवनत कनखियों से प्रेम बरसाते हुए किसी की प्रिया प्रथम बार कन्दुकक्रीडा में दिखायी पड़ी आदि। अत अनुराग की इन परिस्थितियों के बहुविध होने से रंगीन हृदय पाठक को इसकी कथाओं में विविध व्यंजन की भाँति नारी सौन्दर्य की रस धारा सर्वत्र नूतन तथा अनास्वादित प्रतीत होती है जिसका पान करते मन ऊबता नहीं। दूसरी विशेषता कथाकार दण्डी की यह है कि वह इन सौन्दर्य दर्शनों का बहुत विस्तार नहीं करता अनावश्यक उत्प्रेक्षाओं रूपकों या उपमाओं की भरमार यहाँ नहीं है, अलंकारों की लम्बी कल्पना वस्तु दर्शन में कोई कवि तब करता है जब उसे अपनी प्रतिभा का चमत्कार उद्घलित किये रहता है पर यहाँ दशकुमारचरित का कवि नारी-सौन्दर्य के रस पान में ऐसा डूब जाता है कि मन और वाणी दोनों को कल्पना और उक्ति के कृत्रिम रूप विधान का क्षण नहीं मिल पाता। कवि बहकता नहीं सौन्दर्य के रंग में नहाया मन वाणी के धरातल पर उतर आता है और हम सौन्दर्य के सहज रंग का दर्शन कर लेते हैं। इसी दर्शन और सौन्दर्य के इसी रस पान में दशकुमार चरित विगत डेढ़ हजार वर्षों से सहृदयों के मन को अमृत रसिकता के सीकरों से आर्द्र करता रहा है।

जैसा कि पहले कहा गया है नारी सौन्दर्य के दो रूपों का चित्र दशकुमार

चरित' मे है—एक तो है दृश्य-सौन्दर्य, जिसमे कवि नारी के रूप का वर्णन करता है, दूसरा है क्रियाशील सौंदर्य, जिसमे नारी किसी भाव-व्यापार मे रत है और उसकी क्रियाओ मे उसके मन की सुकुमार गति अपना दर्शन दे रही है, सौंदर्य का यह पक्ष अत्यन्त मनोग्राही है और दण्डी ने इस सौंदर्य को अन्यूनानतिरिक्त मनोहारिणी अवस्थिति मे सजाकर उपस्थित किया है, भिन्न भिन्न वर्णनो से कुछ पेशल वाक्य खण्ड यहा दिये जा रहे हैं—

कमनीयकर्णपूरसहकारपल्लवरागेण प्रतिबिम्बीकृतबिम्ब
रदनच्छद बाणायमानपुष्पलावण्येन शुचिस्मितम् ।
(पूर्व० पचम उच्छ्वास, अवन्ति सुन्दरी वर्णन)

अवन्तिसुन्दरी ने कान मे आम के किसलय पहन रखे थे, उन किसलयो जैसे ही लाल उसके अधर थे, बिम्बाफल जिनकी परछाइ लगता था। उसकी पवित्र मुस्कान म काम के बाण बननेवाले पुष्पो की सुन्दरता बिखर रही थी अर्थात् खिलनेवाले फूल-सी उसकी पवित्र मुसकान काम के बाण के समान आघात कर रही थी।

अवपतनोत्पतननिरन्तरस्थमुक्ताहारम् अकुरितघर्मसलिलदूषितकपोलपत्रभग-शोषणाधिकृत-श्रवणपल्लवानिलम् आगलितस्तनतटाशुकनियमन व्यापृतैक-पाणिपल्लवम् । (षष्ठ उच्छ्वास, कन्दुकावती वर्णन)

कन्दुक का ऊपर नीचे उछालने म राजकन्या का शरीर चपल था अत गले म मोतियो की माला भी आन्दोलित होकर इधर-उधर हो रही थी। क्रीडा के श्रम से पसीने की बूदें आ रही थी जिनसे कपाल पर की गयी पत्र रचना के घुल जाने का डर था अत राजकन्या ने कान म पहने किसलयो को अपनी हवा से रस सुखा देने का अधिकार दे रखा था, अर्थात किसलयो की हवा कपोलो का पसीना सुखाये जा रही थी। क्रीडा मे वक्षस्थल स उत्तरीय का अशुक नीचे गिरता जा रहा था जिसे सँभालने मे उसका किसलय-सा कोमल एक हाथ व्यस्त था।

दन्तच्छद किसलयलधिना हर्षाश्रुसलिलधारा शीकरकणजालकलेदितस्य स्तन तटचन्दनस्याद्रता निरस्यतास्यान्तराल नि सृतेन तनीयसानिलेन हृदयलक्ष्य-दलन दक्षिणरतिसहचरशरस्यदायितेन तरगितदशनचन्द्रिकाणि कानिचिदस्फुटा-क्षराणि कलकण्ठीकलान्यसृजत। (सप्तम उच्छ्वास, कनकलेखा-वर्णन)

कुमार मन्त्रगुप्त ने तान्त्रिक की तलवार से राजकुमारी कनकलेखा की रक्षा कर दी और राक्षस स राजकुमारी को राजप्रासाद मे पहुँचाने को कहा, उस समय कनकलेखा मन्त्रगुप्त के अनुराग म बँध जाती है और कुछ कहना चाहती है उसी स्थिति का यह वर्णन है—कनकलेखा की आँखो म हर्ष क

आँसू बहने लगे आँसू की बूंदों से स्तन पर लगा चन्दन का अगराग गीला हो गया यह बालना चाहती थी उसके पूर्व उसके मुख के अन्तराल से अधर रूपी किसलयों को लाँघता अत्यन्त सुकुमार उच्छ्वास कामीजनों के हृदय को लक्ष्य बनानेवाले काम के बाण वेग के समान निकला उसने स्तनतट के गील चन्दन को सुखा दिया दाँतों की उज्ज्वल चमक तरंगित हो उठी, कोकिल के मधुर स्वर से कुछ के अक्षर कंठ से निकल पड़े।

नत्योत्थिता च सा सिद्धिलाभशोभिनी किं विलासात्, किमभिलाषात् किम कस्मादेव वा न जाने—अस्कृ मा सखीभिरप्यनुपलक्षितनापाङ्गप्रेषितम सविभ्रमारचितभ्रूलतमभिवीक्ष्य मापदेश च किंचिदविप्रवृतदशनचन्द्रिक स्मित्वा लोकलोचनमानसानुयाता प्रातिष्ठत। (द्वि०उच्छ० रागमञ्जरी वर्णन)

(अपहारवर्मा कह रहा है—रागमञ्जरी नाचकर खड़ी हो गयी, उसे अपनी सिद्धि मिल गयी थी, उस लाभ से शोभित होकर उसने नहीं जानता हूँ कि क्या अपनी विलास प्रवृत्ति के कारण अथवा मेरे प्रति अनुराग रखकर, अथवा बिना कारण ही अपनी सखियों से भी छिपाकर तिरछी चितवन से विलास से भौंहें टेढ़ी कर कई बार मुझको देखा किसी बहाने अपने दाँतों की चमक बिखेरती हुई मुस्करा कर दर्शक जनों के नेत्रों और चित्तों को अपने साथ लिए हुए घर चली गयी।)

अमृतफेनपटल-पाण्डरशयनशायिनीम आदिवराह दंष्ट्रांशुजालजालम् अस स्रस्तदुग्धसागरदुकूलोत्तरीयां भयमाध्वसमूर्छितामिव धरणिम अरुणा धरकिसलयनास्यहेतुभिराननारविन्दपरिमलोदवाहिभिर्निश्वासमातारिश्व भिरीश्वरक्षणदहनदग्ध स्फुलिङ्गशेषमनङ्गमिव सधुक्षयन्तीम्। (पञ्चम उच्छ्वास नवमालिका वर्णन)

(नवमालिका अमृतफेन की परतो के समान धवल शय्या पर सोयी हुई थी, आदिवराह ने जब रसातल से अपने दाँतों पर उठाकर धरणी का उद्धार किया था वह कन्या सुप्तावस्था में भय से घबराई मूर्च्छित उस धरणी के समान शोभायुक्त थी उसके उज्ज्वल आभूषण और वस्त्रों की चमक वराह की दंष्ट्रा की किरणों की चमक थी कन्धे से दुग्धसागर रूपी दुकूल का उत्तरीय नीचे खिसक गया था। वह बाला अपने निश्वासों के उस पवन से जिससे लाल अधर के चमक रूपी नूतन किसलय आन्दोलित हो रहे थे, जो मुख कमल की सुगन्धि को उड़ाकर फैला रहा था, शिव के तृतीय नेत्र की आग से जलाये जाने पर कण मात्र अवशिष्ट काम को उज्जीवित कर रही थी।)

कहीं कहीं परम्परागत उपमानों से हटकर कवि ने जो नवीन उपमान तात्कालिक स्थिति को मुखर करनेवाले कल्पित किये हैं वे प्रसन्न अर्थबोध के

साथ मन को भी प्रसन्न कर देते है, अपहारवर्मा जसे ही नगर मे चोरी कर अपने आवास की ओर चला, आभूषणो मे चमकती एक युवती सामने आ गयी जो अपने पूव निश्चित वर उदारक के पास पिता की चोरी से जा रही थी कवि कहता है —

अथासौ नगरदेवतेव नगरमोपरोपिता नि सम्बाधवेलाया नि सता सनिकृष्टा काचिदुन्मिषद्भूषणा युवतिराविरासीत। (द्वितीय उच्छवास)

इसके अनन्तर नगर मे मेरे द्वारा चोरी किये जाने से रुष्ट हुई नगरदेवता के समान सुनसान बेला म निकलकर अपने आभूषणो म चमकती हुई कोई मेरे निकट दिखायी पडी, वह एक युवती रमणी थी।)

रात्रि मे चोरी करके जा रहे युवक को आती हुई युवती रुष्ट हुई नगर देवता के समान दिखायी पडी, उपमान का यह सौन्दय तात्कालिक अथ बोध के कितना अनुरूप है।

सन्ध्या और प्रभात के वणन कई बार करने पर भी कवि के उपमान नये हैं—

अथ तन्मनश्च्युततम स्पर्शभियेवास्त रविरगात। ऋषिमुक्तश्च राग सन्ध्या त्वेनास्फुरत।

(तपस्वी मरीचि के मन से निकाले हुए अनानान्धकार के स्पश क भय मे सूय अस्त हो गया। ऋषि ने जिस राग को त्याग दिया था, वही सन्ध्या की लालिमा मे स्फुरित होने लगा।)

पश्चिमाम्बुधिपय पात - निर्वापितपतगाङ्गारधूम-सभार इव भरिततमसि नभसि विजम्भिते।

—पश्चिमी समुद्र के जल म सूय रूपी अगार के गिरने और बुझने से जो धुएँ के बगूले उठे, उनसे आकाश अन्धकार म जँभाई लने लगा।)

अशुष्यच्च ज्योतिष्मत प्रभामय सर । प्रासरच्च तिमिरमय कदम ।

(ज्योतिष्मान सूर्य का प्रकाश पूण सरोवर सूख गया और अन्धकार का कीचड चारा ओर फल गया।)

सध्याङ्गनाया रक्तचन्दनचर्चितकस्तनकलशदशनीये दिनाधिनाथे।

अस्ताचल पर सूय का लाल बिम्ब सन्ध्या रूपी तरुणी के एक स्तन-कलश के समान शोभित हो रहा था, जिस पर लाल चन्दन का अगराग लगाया गया हो।

चिन्तयत्येव मयि महाणवोन्मग्नमातण्डतुरगमश्वासरयावधूनव व्यावतत त्रियामा।

(मैं इस प्रकार स सोचता रहा कि महासमुद्र से निकल कर ऊपर उठत सूय के घोडा के नि श्वास वेग से कम्पित होकर रात्रि भाग गयी।)

नीते च जनाक्षिलक्ष्यता लाक्षारसदिग्धदिग्गजशिरःसदृशे शक्रदिगङ्गना रत्नादर्शकचक्रे ।

(रात बीती। और लाक्षारस से पुते हुए दिशा के हाथी के सिर के समान, इन्द्र की पूर्व दिशा रूपी रमणी के लिए मणि के बने दर्पण सदृश सूर्य का बिम्ब हमारी आँखों के सामने उदय हो गया।)

प्रत्युषिपत्युदयप्रस्थदाववल्प कल्पद्रुमकिसलयावधीरिण्यरुणार्चिषि त नम स्कृत्य नगरायोदचलम् ।

(पहले तो उदयाचल की चोटी पर दावाग्नि की ज्वाला दिखायी पडी फिर कल्पवृक्ष के किसलया के समान लाल किरणें फूटने लगी उस सूर्य को नमस्कार कर नगर की ओर चल पडा।)

कथा के प्रकरणों के विन्यास म भी कवि न कथारम के नूतन सौन्दय की सृष्टि की है। *वह वश्या जीवन के लालन-पालन की शिक्षा का पूरा ज्ञान तपस्वी* मरीचि के मुख से सुनवाता है। सदाचरण का उच्च मापदण्ड जुआ और चोरी म पारगत अपहारवर्मा प्रस्तुत करता है। विहारभद्र राजनीति की उल्टी व्याख्या कर राजा अनन्तवर्मा को अनाचार और विलास की ओर प्रवत्त कर देता है पर इस अनाचार को समझाने म उसके मुख स ही राजनीति के सदाचार कह दिय जाते हैं। इस प्रकरण वक्रना का लालित्य कहना चाहिए।

भाषा प्रकरण और वस्तु के लालित्य का विश्लेषण करने पर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि दशकुमार चरित की मूल रचना का स्वरूप चरित भाग के आठ उच्छवासो म ही शेष है। सम्भवत आदि-अन्त म कथा का पाठ नष्ट हो जाने से पूर्वपीठिका तथा उपसहार के रूप म उत्तरपीठिका की रचना किसी दूसरे कवि न की है जिसे दण्डी के कथाकाव्य को समग्र रूप से देखना इष्ट था। पूर्वपीठिका म कुछ अश मूल ग्रन्थ के भी है, जो नष्ट होन से बच गये होंगे, जिनके आधार पर ही सम्पूर्ण कथा का तारतम्य दूसरे कवि ने ठीक किया।

10

दशकुमार चरित के सुभाषित

अवज्ञासोदय दारिद्रयम।
(अवज्ञा का बडा भाई दारिद्रय है, दारिद्रय के साथ अवज्ञा का जन्म होता है।)

अवसरेषु पुष्कल पुरुषकार ।
(समय पर भरपूर पुरुषार्थ ही योग्य है)
आगम दीपदृष्टेन खल्वध्वना सुखेन वर्तते लोकयात्रा।
(जीवन की यात्रा म शास्त्र के दीपक म प्रकाशित मार्ग ही सुखदायी होता है।)

आत्मानमात्मनानवसाद्यैवोद्धरन्ति सन्त ।
(विचारवान् पुरुष आत्मा से अपने को पीडित न करके ही अपना उद्धार करते हैं।)

कोऽति वर्तते दैवम।
(भाग्य को कौन लांघ सकता है ?)

किं हि बुद्धिमत्प्रयुक्त नाभ्युपैति शोभाम।
(बुद्धिमान पुरुष द्वारा किया गया कौन सा काय प्रशसा (शोभा) को नही प्राप्त करता ?)

गहिण प्रियहिताय दारगुणा ।
(स्त्री के गुण गृहस्थ व्यक्ति के लिए वाछित हित करनेवाले होते हैं।)

चित्तज्ञानाऽनुवर्तिनोऽनथा अपि प्रिया स्यु ।
दक्षिणा अपि तदभावबहिष्कृता द्वेष्या भवयु ।

(मन और विचारों के लिए अनुकूल लगनेवाले अनय भी प्रिय हो जाते हैं। तथा उनसे मेल न रखनेवाले अच्छे भी काय शत्रु हो जाते है।)

दिव्य हि चक्षुर्भूतभवदभविष्यत्सु व्यवहितविप्रकृष्टादिषु विषयेषु शास्त्र नामाप्रतिहतवृत्ति।

(शास्त्र वह दिव्य दृष्टि है जिसकी गति भूत, वतमान और भविष्य के विषयो म दूसर तत्त्वा स अन्तर्हित (छिपे) तथा दूर स्थित विषया मे भी वे रोक टोक जाती है।)

धमपूते मनसि नभसीव न जातु रजोऽनुषज्येत।

(धम से पवित्र मन म कोई मलिनता वैसे ही नही आ पाती जैसे आकाश म धूल नहीं रुक सकती।)

न हि मुनिरिव नरपतिरुपशमरतिरभिभवितु मरिकुलमलम्, अवलम्बितु च लोकतन्त्रम्।

(मुनि के समान शान्ति प्रिय राजा न तो शत्रुओं का दमन करने म समथ होता है और न ही लोक की रक्षा व्यवस्था को संभालने म।)

न ह्यलमतिनिपुणोऽपि पुरुषो नियतिलिखिता लेखामतिक्रमितुम्।

(अत्यन्त चतुर भी पुरुष भाग्य मे लिखी रेखा का लाँघन म समथ नही होता।)

नान्यत्पापिष्ठतममात्मत्यागात्।

(आत्महत्या स बडा पाप दूसरा नही है।)

परलोकभय चैहिकेन दु खेनान्तरितम्।

(इस ससार का दु ख परलोक के भय को दबा देता है।)

स्वदेशो देशान्तरमिति नेय गणना विदग्धपुरुषस्य।

(चतुर व्यक्ति के लिए स्वदेश और परदेश का भेद नही होता, वह सवत्र समान रूप स विचरण करता है।)

सहायक ग्रन्थ-सूची

मूल ग्रन्थ

1 काव्यादर्श (पंडित रंगाचार्य शास्त्री की 'प्रभा' टीका भण्डारकर प्राच्य विद्या मन्दिर, पुणे, 1938)

2 काव्यादर्श (पंडित रामचन्द्र मिश्र की 'प्रकाश' टीका, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1958 ई०)

3 काव्यादर्श (व्याख्याकार डा धर्मेन्द्रकुमार गुप्त मेहरचन्द्र लछमनदास दरियागंज दिल्ली, 1973 ई०)

4 दशकुमार चरित (कवीन्द्राचार्य सरस्वती कृत पदचन्द्रिका टीका, बम्बई, 1917 ई०)

5 दशकुमारचरित (बालविबोधिनीटीका, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी)

6 अवन्तिसुन्दरी (त्रिवेन्द्रम युनिवर्सिटी, 1954)

इतिहास और आलोचना

7 आचार्य दण्डी एवं संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास दर्शन (डा जयशङ्कर त्रिपाठी, लोकभारती, इलाहाबाद, 1968 ई०)

8 कथासरित्सागर (सोमदेव, टीका० श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, 1960 ई०)

9 कामन्दकीय नीतिसार (आनन्दाश्रम मुद्रणालय पूना 1977 ई०)

10 काव्यमीमांसा (राजशेखर चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1934 ई०)

11 काव्यालंकार (भामह बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, 1962 ई०)

12 भारतीय इतिहास का उन्मीलन (श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, हिन्दी भवन, प्रयाग, 1957 ई०)

13 वाकाटक राजवंश का इतिहास और अभिलेख (डा वा वि मिराशी, तारा पब्लिकेशन वाराणसी 1964 ई०)

14 सस्कत साहित्य का इतिहास(प्रो ए बी कीथ, हिन्दी-अनुवाद—डा मगलदव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास 1960 ई०)
15 हिन्दी काव्यधारा (म म प राहुल साकृत्यायन, किताव महल, इलाहाबाद)
16 हिस्ट्री आफ सस्कत पोएटिक्स (म म पा वा काणे, 1961 इ०)

□□